नव निर्माण साहित्य माला का पाँचवाँ फूल

हमारे युग की कहानियाँ

गति, जीवन, उत्सर्ग, त्याग, वीरता, मानविक
करुणा, विषाद और मनोविज्ञान
की सुदृष्टियुक्त कहानियाँ

सपादक
सूरजमल गर्ग,
बी. ए., एल एल. बी. सा. र.
शिखरचंद जैन, साहित्यरत्न

प्रकाशक—
नरेन्द्र साहित्य कुटीर
५७, दीतवारिया, इन्दौर

मूल्य—दो रुपये बारह आने
अक्टूबर, १९४४

मुद्रक—
बृजकृष्ण भार्गव
भार्गव फ़ाइन आर्ट प्रि. व., इन्दौर.

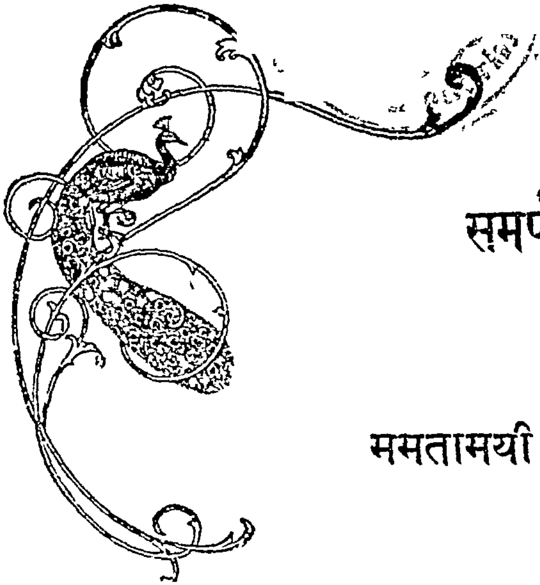

समर्पण

ममतामयी मां को

सूरजमल गर्ग

नरेन्द्र

सम्मुख उपस्थित करती है और जीवन की गुत्थियो को सुलझाने मे उसकी सहायता करती है। वह हमारे जीवन का एक Turning point होती है। उसमे मानव-स्वभाव का चित्रण रहता है और वही हमे एक दूसरे के सुख दु:खो से परिचित कराती हुई कभी-कभी हमारी अन्तरात्मा पर चोटकर हमारे हृदय की सुप्त मानवता को जगा देती है। सक्षेप मे अमर कलाकार रवीन्द्र के शब्दो मे 'नदी जैसे जल स्रोत की धारा है मनुष्य वैसे ही कहानी का प्रवाह।' केवल युवक अथवा प्रौढ ही कहानी के इस प्रभाव से प्रभावित हो, यही बात नही है किन्तु अपने जन्म के पश्चात् ज्योही हम कुछ सुनने, समझने और समझा सकने के योग्य होते है, हमारे ज्ञान का क, ख, ग ही कहानी से प्रारम्भ होता है। पालने मे लेटे-लेटे माँ की लोरियो के साथ-साथ ही हमारा कहानी से परिचय प्रारम्भ होता है और फिर तो बूढी दादी अथवा नानी की गोद मे लेटकर और मचल-मचलकर हम भूत-प्रेत, राजा-रानी अथवा चिडे-चिडी की कहानी सुना करते है। हमारी अवस्था की अभिवृद्धि के साथ ही साथ हमारी कहानी के विषय सबधिनी रुचि मे भी परिवर्तन होता रहता है और हम राजा-रानी की कहानियो से ऊबकर अन्य विषयो की कहानियो की ओर आकर्षित होते है।

मनुष्य को अपनी वीरता के कार्यों का वर्णन करने मे एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है और उसकी यह प्रवृत्ति

आदिमकाल से चली आ रही है, किन्तु अपने को अभिव्यक्ति करके ही वह सन्तुष्ट नही होता, वह दूसरो के संबध मे भी जानना चाहता है। इस प्रकार अपने को अभिव्यक्त करने की भावना एव दूसरे के संबध मे जानने की उत्सुकता से ही कहानी का प्रारम्भ माना जा सकता है। इन्हीं भावनाओं के फल स्वरूप वीर-पूजा का भी श्रीगणेश होता है और अपने पूर्वजो की गौरव-गाथाओं के वर्णन की प्रवृत्ति ने भी कहानी साहित्य के विकास मे बहुत हाथ बँटाया है।

दूसरे शब्दो मे, 'कहानी का उदय चाहे जिस किसी कारण से हुआ हो, परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि भावो को व्यक्त करने के लिए साधन-सुविधा मिलते ही मनुष्य के हृदय मे कथा-प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ, और तभी से यानी, भाषा की शैशवावस्था से ही, साहित्य मे किसी न किसी रूप मे इसका अस्तित्व पाया जाता है। सच्ची बात तो यह है कि ज्यों-ज्यों मनुष्य सभ्यता की ओर अग्रसर होने लगा, त्यों-त्यों उसके हृदय की अनुभूति एक दूसरे पर प्रकट होने के लिए उसे व्याकुल बनाती रही। इसी अनुभूति के आदान-प्रदान स्वरूप कहानी का जन्म हुआ।'[1]

लिपि आविष्कार के पूर्व भी कहानियाँ कही एव सुनी जाती थीं और इस प्रकार की कहानियाँ चित्र-कला के द्वारा प्रस्तर खंडो पर अंकित करके सुरक्षित भी रखी जाती थीं।

---

[1] गिरधारीलाल शर्मा 'गर्ग'—कहानी—एककला पृ. १५०

मिश्र के पिरामिडो मे ऐसे पत्थर बहुतायत से प्राप्त होते है। चीन एव अमेरिका मे भी उनकी कमी नही है किन्तु भारतवर्ष में अभीतक ऐसे बहुत से पत्थर नही मिले है, फिर भी "एक ऐसा पत्थर मिल गया है जिसमे एक गोपाल की कहानी, गौओ का वर्णन, एक राज-कन्या को दुष्टो के हाथ से बचाने के लिए युद्ध करना आदि लिखे है। यह सारी कहानी चित्रो मे दी हुई है और मुझे मेरे मित्र श्रीयुत गौरीशकर ओझा (क्यूरेटर, राजपूताना म्यूजियम अजमेर) ने समझाया था। यह पत्थर अजमेर मे विद्यमान है। जहाँ तक मुझे पता मिला है यह ऐसा पत्थर है जिससे इस विषय का विद्यमान होना भी ज्ञात होता है। सारनाथ मे भी ऐसे पत्थर उपस्थित है जिनमे जातको का वर्णन बुद्ध के उपदेश चित्रो द्वारा मिलता है। अब मै इस चित्र की कहानी बतलाता हूँ। अमेरिका के उत्तर मे एक बडी झील है जिसे लेक सुपीरियर कहते है। इस झील के समीप एक पर्वत की कन्दरा मे यह पत्थर मिला था। उस देश के वासियों का राजा, जिसका नाम किग फिगर था, अपनी सेना को लेकर उस पर्वत की ओर युद्ध करने आया। वह एक ऐसे दूर देश से आया था जिसके आने मे उसे पूरे तीन दिन लगे और एक ऐसे मार्ग से आया था जिसमे नदी पार करनी पडती थी। उसके सग इक्यावन मनुष्यो की सेना थी और वह सेनापति बनकर एक घोडे पर चढकर आया था, इत्यादि। अब यह सारी कहानी

इसी चित्र से निकल सकती है। राजा का नाम किंग फिशर था। यह एक पक्षी का नाम भी है जिसका चित्र अन्यत्र दिया गया है, वह घोडे पर सवार था। वह नदी से किश्तियों द्वारा गुजरा। पाँच किश्तियों मे जितने मनुष्य बैठे थे लकीरों से ज्ञात होगा कि उनकी संख्या पूरी ५१ थी। कुछ कछुआ, नदी का उपलक्षण है। एक दिन तब पूरा होता है, जब सूर्य-उदय होकर अस्त हो। आकाश को गोल बनाकर तीन गोल-गोल गेंद सूर्य के आकार को बतलाते है। पर्वतों मे सेना तब ही पहुँची जब शत्रु सेना को परास्त कर दिया। जिस प्रकार से यह कहानी बनाई गई है, इसी प्रकार शिलाओं से आजकल वैज्ञानिक तत्ववेत्ता प्राचीन-काल का इतिहास निकालते है और इस प्रकार की शिलाएँ समय-समय पर भारतवर्ष मे बहुत मिलेंगी।"* इसके पश्चात् तो बौद्ध-युग मे जब कि साहित्य मे कथा-साहित्य का विकास हो रहा था हमे अजन्ता, ऐलोरा एवं बाघ की गुफाओं मे जो भित्ति-चित्रण मिलते है और उनमे भगवान् बुद्ध के पूर्वापर जीवन की जो घटनाएँ जातकों से अंकित की गई है, वे तो देखते ही बनती है।

कहानी, हमे अपने लिखित रूप मे संसार की प्राचीनतम धर्म-पुस्तक वेद मे मिलती है। वेदों के सरमा-पणि संवाद, यम-यमी-संवाद आदि लिखित कहानियो के प्रारम्भिक रूप कहे जा

---

* केशवदेव मिश्र—नागरी अंक और अक्षर पृ० ३२-३३

सकते है। इसी प्रकार ऋग्वेद मे इन्द्र का वृत्र को मारने का एव उसके बाड़े मे से बन्दिनी गायो को मुक्त करने का वर्णन भी किसी कहानी से कम नहीं है।

वेदो के पश्चात् ब्राह्मणो एवं उपनिषदो मे भी हमे कहानियाँ दृष्टिगोचर होती है। शतपथ ब्राह्मण की उर्वशी-पुरुरवा एव शकुन्तला की कहानियाँ तो इतनी प्रसिद्ध है कि महाकवि कालिदास ने उन्ही से प्रेरणा पा अपने विक्रमोर्वशीय एव अभिज्ञान शाकुन्तल जैसे अमर नाटको की रचना की। कठोपनिषद् का यम-नचिकेता प्रकरण इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण है। पुराण तो कथा-साहित्य से ही भरे पडे है। उनमे हम भारतीयो का प्राचीन इतिहास सुरक्षित है और उनके साथ ही साथ अनेकों आख्यायिकाएँ थी। अष्टादश पुराणो मे सैकडो ही नही सहस्रो की सख्या मे कथाएँ है। इसी युग की रचनाओ मे हम रामायण एव महाभारत को भी सम्मिलित कर सकते है। आज के एक लाख श्लोको के इस विशाल ग्रथ महाभारत मे हमे अनेको कथाएँ, उपकथाएँ एव उपाख्यान प्राप्त होते है। यद्यपि विद्वानो मे मत-भेद हो सकता है कि मूल महाभारत मे—जिसके कि प्राचीन नाम 'जयकाव्य' एव 'भारत' प्रतीत होते है—ये उपाख्यान थे या नही किन्तु आज तो हमे अपने जिस रूप मे महाभारत प्राप्त होता है, उसमे के नलोपाख्यान, शाकुन्तलोपाख्यान, सावित्र्युपाख्यान आदि बहुत प्रसिद्धि प्राप्त

कर चुके है और उनसे अनेको काव्यो एव नाटको को प्रेरणा मिलती रही है ।

इसी प्रकार महात्मा बुद्ध के उपदेश भी कहानियो के रूप मे होते थे और पीछे से इसी पद्धति को महात्मा ईसा ने भी अपनाया । इन दोनो महापुरुषो के इस प्रकार के उपदेशो की कहानियो से त्रिपिटक और बाइबिल के पृष्ठो के पृष्ठ भरे पडे है । हमारे यहाँ बौद्ध-युग मे भी कहानियो की प्रचुरता रही है और 'जातक' इसी प्रकार की कहानियो का सग्रह कहा-जा सकता है । जैन-साहित्य मे भी कहानियो की कमी नही रही है । जैन-साहित्य के 'आराधना कथा कोश' नाम के तीन ग्रथो का पता चलता है जिनमे से एक तो आचार्य प्रभाचन्द्र का गद्य बद्ध है और दूसरा मल्लि भूषण के शिष्य ब्रह्मचारी नेमिदत्त का पद्य बद्ध । इनके अतिरिक्त एक तीसरा 'बृहताराधना कथाकोश' हमे आचार्य हरिषेण का भी प्राप्त होता है जो कि वि. सवत ९८९ का है और जिसमे कि १५७ कथाएँ और बारह हजार श्लोक है । *

सस्कृत-काल मे कहानियो को दो भागो मे विभक्त कर दिया गया था (१) आख्यायिका और (२) कथा । आख्यायिका वह होती थी जिसमे नायक स्वय अपने मुख से अपनी कहानी कहता है—नायकेण वाच्या । दूसरे शब्दो मे इसे हम आधुनिक

---

* नाथूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास पृ ४३४

आत्म-कथा प्रणाली की कहानी कह सकते है और सस्कृत-साहित्य मे इस प्रकार की रचनाओ के उदाहरण महाकवि दण्डिन् के दशकुमार चरित् से दे सकते है, जिसमे कि विश्रुत आदि दश राजकुमार अपनी अपनी यात्राओ, विपत्तियो एव असफलताओ की कहानियाँ सुनाते है । कथा उसे कहते थे जिसमे नायक नही किन्तु कोई अन्य व्यक्ति कथा कहता हो—नायकेनेतरेण वा । नायक स्वय अपना वर्णन नही करता किन्तु कोई दूसरा व्यक्ति उसके सबध मे चर्चा करता है । इसे हम आधुनिक ऐतिहासिक प्रणाली की कहानी मान सकते है । सस्कृत मे इसके उदाहरण महाकवि बाण के 'हर्षचरित्' एव 'कादम्बरी' है । कादम्बरी मे एक शुक विदिशा नरेश शूद्रक को एक कहानी सुनाता है । आकार की दृष्टि से यद्यपि कादम्बरी आज के किसी उपन्यास से कम नही किन्तु सस्कृत-साहित्य मे तो उसकी गणना कथा मे ही होती है । ये सभी रचनाएँ गद्य मे है जिनके कि नाम है—'साहसाकदेव चरित्' एव महाकवि बिल्हण का 'विक्रमाक देव चरित्' किन्तु आज हमारे दुर्भाग्य से ये उपलब्ध नही है । आचार्यो के मतानुसार कहानियो के मुख्य गुण ओज, कान्ति, दीप्ति एव श्लिष्ट थे । आख्यायिका मे साहस कर्म वर्णन और कथा मे सृष्टि-सौदर्य वर्णन अधिक रहता था ।

लगभग इन्ही दिनो हमारे यहाँ पशुपक्षियो की कहानियो का ही बोलबाला रहा । ये रचनाएँ योरोपियन साहित्य के

Fables के ढंग की कही जा सकती है जिनका कि वहाँ प्रमुख आचार्य Aesope हुआ है जो कि ग्रीक था। हमारे यहाँ इस प्रकार की रचनाओं में सब से पहिले हमारी दृष्टि विष्णु शर्मा कृत पंचतंत्र पर जाती है जोकि दक्षिण देश के एक राजकुमार को छः महिनों में नीति का ज्ञान प्राप्त करा देने के उद्देश्य से लिखा गया था। इस पुस्तक के अनेकों पौर्वात्य एवं पाश्चात्य भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं जिन में से सर्व प्रथम पहलवी भाषा में सुल्तान खुसरो नौशेरवाँ की आज्ञा से सन् ५३१-७९ ई. में हुआ था। मैक्डानल्ड के मतानुसार पंचतंत्र की रचना बौद्ध-ग्रंथों के आधार पर हुई है और इसकी कुछ कथाएँ 'जातक' की कथाओं से मिलती जुलती हैं जो कि ३८० ई. के लगभग वैशाली की परिषद् में तैयार किया गया था और जो कि पाँचवी शताब्दि के लगभग सुत्तपिटक के रूप में पाली भाषा में विद्यमान था। 'हितोपदेश' पञ्चतंत्र के आधार की ही एक रचना कही जा सकती है जो कि पंचतंत्र की भाँति ही किसी राजकुमार के लिए लिखी गई प्रतीत होती है। इन दोनों ग्रंथों की रचना गद्य में है किन्तु यत्र तत्र नीति के श्लोकों की पुट है और प्रत्येक कहानी का ध्येय किसी न किसी नीति को हृदयंगम कराना रहता है। ये रचनाएँ उन चीनी पिटारों की भाँति है जिनमें एक में से दूसरा और दूसरे में से तीसरा निकलता ही रहता है।

नो],

सिंहासन द्वात्रिंशतिका नामक एक कथा-ग्रंथ और है जो कि बहुत करके वररुचि-निर्मित है। इस समय संस्कृत में यह पुस्तक उपलब्ध नहीं है। परन्तु इसका अनुवाद हिंदी में 'सिंहासन बत्तीसी' के नाम से उपलब्ध है, उसीके आधार पर किसी ने 'द्वात्रिंशत्पुत्तलिका' संस्कृत में लिखी है यह ज्ञात होता है। किन्तु मूल पुस्तक के अनुवाद तो न जाने कितने हो चुके हैं, इस रचना में विक्रम विषयक ३२ कथाएँ हैं। फ्रेंच पादरी-ब्रशे नामक सज्जन १६५५ से १७३२ तक मद्रास में अपना धर्म-प्रचार करता रहा है। उसने इस ग्रंथ की अनेक कथाओं को अपनी भाषा में अनूदित किया है। प्रायः २५० वर्ष पूर्व इस पुस्तक का अनुवाद इटेली में जूसेप्यपारीनी नामक सज्जन ने किया था। इससे भी प्रथम सवा हजार साल पहिले फ़ारस में भी इसका अनुवाद किया जा चुका है। अरेबिक में भी इसका अनुवाद किया जा चुका है। अरेबिक में भी इसका उपयोग लगभग इसी समय हो चुका है। और इसी के आधार पर मंगोल भाषा में समरकन्द में 'अर्जीबोजी' नाम से भी हो चुका है। १८१७ में फ्रेंच में जो अनुवाद किया जा चुका था, उसका भी आधार वही फ़ारस की कृति था, संस्कृत से सीधा अनुवाद नहीं हुआ था, 'बेरन दानिएल लॅस्कालिए' नामक व्यक्ति ने किया था। 'एर्थ' का कहना है कि ईरानी-भाषा में इसके १० अनुवाद प्रस्तुत हैं। इसी प्रकार चीनी और तिब्बती

मे भी कई अनुवाद मिलते है। इटेलियन विद्वान् 'पुले' का कहना है कि —यूनानी भाषा मे भी इस पुस्तक की कुछ कथाऍ अनूदित हो चुकी है।

“ सस्कृत-भाषा मे वेताल भट्ट की रचनाई हुई एक वेताल पञ्चविंशति नामक पुस्तक भी थी, इसमे विक्रम सबंधी २५ कथाऍ थी। परतु यह पुस्तक भी उपलब्ध नही है। शेक्सपीअर ने हिंदी-सेक्शन नामक एक पुस्तक लिखी है। उसका आरभ ही इस पुस्तक से हुआ है। मि. लासन ने १८३८ मे एक सस्कृत पुस्तक लिखी थी, उसका आरम्भ भी वेताल पञ्चविंशति मे ही किया था। गासदी टास्सी नामक फ्रेञ्च पडित ने अपनी रचनाओं मे इसी पुस्तक का सर्व प्रथम अनुवाद दिया है। सुना है गेटे ने इस पुस्तक का कोई भाव ग्रहण कर संभवत: 'पाडिया' नामक कविता की रचना की है। १८२० ई. मे ईकन नामक जर्मन पडित ने भी इसका अनुवाद किया है।

इस प्रकार सस्कृत मे शुक सप्ततिका नामक पुस्तक भी प्राप्त थी, परन्तु मूल रूप मे वह प्राप्त नही है, पर उसके अनुवाद फ्रेञ्च, टर्की, जर्मन, अंग्रेजी और इटेलियन भाषा मे मिलते है। फारस मे उसका अनुवाद, 'तूतीनामा' नाम से तथा हिन्दी मे 'तोता मैना' का किस्सा के नाम से है। किसी डाम्पर नामक एक जर्मन पडित ने 'एशिया' नामक अपनी रचना मे शुक-सप्तति की कथा का अनुवाद दिया है। इसमे ७० कथाऍ

विक्रम विषयक है। इन्हीं पुस्तको के आधारो पर ए टी हार्टमन् ने १८०३ मे अपनी ग्रथमाला मे दो रचनाएँ प्रकाशित की है, मि ऑम्सटर्ड ने फ्रेच मे एक ग्रथमाला जेनेवा से आरम्भ की थी, उसमे भी इनकी कथाएँ प्रकाशित की थी, इन्ही तीनो पुस्तकों का अनुवाद पुर्तगीज भाषा मे हुआ है'।*

आगे चलकर हमे सोमदेव नामक एक काश्मीरी ब्राह्मण की 'कथा सरित सागर' प्राप्त होती है जो लगभग २२००० श्लोकों मे महाकवि होमर की ओडेसी एव इलियड दोनो से दुगने कलेवर मे लिखी गई थी। आग्ल विद्वानो के मतानुसार इसका समय लग-भग १०२७ ई. है और यह गुनाढ्य की 'बृहत्कथा' के आधार पर लिखा गया था जोकि बूलर के मतानुसार ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी मे मूल पैशाची भाषा मे लिखी गई थी। इसी पुस्तक मे हमे राजा शिवि की कथा भी प्राप्त होती है। इसी प्रकार क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथा मजरी' भी गुनाढ्य की 'बृहत्कथा' के आधार पर लिखी गई थी। इसमे लग-भग ७५०० श्लोक है एव यह भी ११ वी शताब्दि के लगभग लिखी गई थी। (मेकडानल्ड)

संस्कृत-साहित्य के कथा विभाग को देखकर हमे आश्चर्य हुए बिना नही रहता। हमारी अनेको पुस्तके यवनों के हमामो

---

* अयोध्या से प्रकाशित साप्ताहिक 'संस्कृत' की एक सम्पादकीय टिप्पणी जो विक्रम, मई १९४४ पृ. १३ पर उदधृत की गई है।

का ईंधन हो चुकी है अन्यथा न जाने हमे कितने इसी प्रकार के ग्रथ-रत्न और उपलब्ध होते । हमारा यह कथा-साहित्य केवल हमारे तक ही सीमित नहीं रहा है-किन्तु इसने मध्य एशिया एव योरोप के साहित्य पर भी जो प्रभाव डाला है वह विस्मय जनक है । हम पहिले बतला ही चुके है कि किस प्रकार हमारी इन पुस्तकों के योरोप एव एशिया की भाषाओ मे अनुवाद हो चुके है और यही कारण है कि "कुछ लोगो का मत है कि मध्य-एशिया की सब जातियो के कथा-साहित्य पर भारत की प्राचीन आख्यायिकाओ की छाप स्पष्ट है । कुछ विद्वान फारसी की 'सिदबाद जहाजी' की कथा की मूल-भित्ति 'विन्दक-जातक कथा' मानते हैं ... एव 'सहस्र-रजनी चरित' के रचना सगठन मे 'वृहत्कथा' की झलक मिलती है"* और इसे स्वय मेकडानल्ड ने भी स्वीकार किया है ।

दुर्भाग्य से सस्कृत भाषा की अवनति के साथ ही साथ हमारे कथा-साहित्य की भी क्षति होती गई और कुछ समय के बाद तो उसका संभवतः लोप सा हो गया किन्तु फिर जब हिन्दी भाषा का युग आया तो उसमे कहानी-साहित्य ने पुनः अपनी करवट बदली ।

हिन्दी-भाषा की सर्व प्रथम कहानी है, इशा अल्ला खा की 'रानी केतकी की कहानी' जोकि १८०३ ई. मे लिखी गई थी

---

* विनोद शकर व्यास—कहानी कला पृ. ३

और जो अपनी भाषा की शुद्धता के कारण प्रसिद्ध है तथा जिसमे "हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट नही है।" सदल मिश्र का नासिकेतोपाख्यान भी इसी काल की रचना है। इसके पश्चात् राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का 'राजा भोज का सपना' आता है और उसके पश्चात् भारतेदुबाबू हरिश्चन्द्र की रचनाएँ। भारतेदु के पश्चात् किशोरीलाल गोस्वामी ने सुदर कहानियाँ लिखी और कहानी-साहित्य के कलेवर को बढाया। इन्ही दिनो बाबू गिरिजाकुमार घोष भी 'पार्वतीनदन' के नाम से रचनाएँ करते थे किन्तु इन दिनो के कहानी-साहित्य पर बंगला और अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्ट झलकता था। भारत मे अंग्रेजो ने सबसे पहिले बगाल को ही जीता था और सबसे पहिले बंगला पर ही उनके साहित्य की छाप भी पडी। अंग्रेजी के सपर्क से होनेवाली बगला साहित्य की प्रगति से प्रभावित हो, हिन्दी मे भी अनेकों लेखको ने बगला से अनुवाद करने प्रारभ कर दिए और इस युग मे मौलिक की अपेक्षा अनुवाद ही अधिक हुए। कुछ समय के पश्चात् तो सरस्वती, इन्दु, शारदा विनोद, कथा-सुखी एव गल्प-माला आदि पत्र-पत्रिकाओ ने अनेको मौलिक कहानी-लेखको को जन्म दिया जिन्होने कि मा हिन्दी की गोदी भरी। अब नये-नये कलाकार इस क्षेत्र मे चमकने लगे और अपनी सुललित रचनाओ से हिन्दी वाङ्मय की अभिवृद्धि करने लगे।

प्रेमचन्दजी ने उर्दू से हिंदी मे आकर आदर्श व यथार्थ का उचित समन्वय कर सीधी साधी और सधी हुई भाषा मे मध्यम वर्ग एव ग्राम्य जीवन के जो चित्रण किए है वे बेजोड है। इनकी रचनाएँ आनेवाले कलाकारो के लिए आदर्श-सी रही है और हमारे कहानी साहित्य के प्रवर्तको मे उनका स्थान प्रमुख है। उनकी रचनाएँ अग्रेजी और जापानी मे भी अनूदित हो चुकी है। और अब इनका रशियन मे भी अनुवाद हो रहा है वास्तव मे वे अपने युग के प्रकाश-स्तम्भ है। प. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी केवल तीन कहानियाँ लिखकर ही अमर हो गए और आपकी 'उसने कहा था' तो किसी समय हिंदी की आदर्श कहानी मानी जाती थी। बाबू जयशकर 'प्रसाद' की कहानियो मे कविता है, कल्पना है, भाषा का सौदर्य है और सबसे अधिक इनका भारतीय बेकग्राउन्ड है। प. ज्वालादत्त शर्मा हिंदी के आरम्भिक मौलिक कहानी लेखको मे से है यद्यपि आपने बहुत नही लिखा। विश्वम्भरनाथ कौशिक गार्हस्थ्य-जीवन के चित्रण मे एव सामाजिक कहानियो के प्रणयन मे अपना सानी नही रखते। चतुरसेन शास्त्री की कहानियो मे हमे गद्य-काव्य का सा आनन्द आता है। आपने ऐतिहासिक कहानियाँ अधिक लिखी है। आपकी 'दुखवा मै कासो कहूँ मोरी सजनी' एक सुन्दर रचना है। रामकृष्णदास की रचनाएँ भी काफी सफल होती है यद्यपि भाषा की तत्समता के कारण वे दुरूह

भी कम नहीं होतीं। विनोदशंकर व्यास अग्रेजी ढग की छोटी-छोटी भावप्रधान रचनाओ के सफल लेखक है। आपने 'कहानी-कला' पर भी एक पुस्तक लिखी है। सुदर्शन आर्य-समाजी विचारो के होने के कारण सुधारप्रिय सामाजिक कहानियो के लेखको मे अग्रणी है। आपने फिल्म-ससार के लिए भी रचनाएँ की है। चडीप्रसाद हृदयेश की कहानियो मे आवश्यकता से अधिक समासो की भरमार रहती है एव आप अपने पाठको को एक काव्य-कानन मे लेजाकर छोड देते है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिन्दी मे राजनैतिक कहानियो का श्रीगणेश करने वाले पूरे यथार्थवादी कलाकार है। आपका 'चिनगारियाँ' नामक सग्रह हिंदी-संसार मे धूम मचाता-सा निकला था। आस्कर वाइल्ड की भाँति आपने भी हिंदी मे एक नवीन शैली को जन्म दिया है। अपनी अनुप्रास व अलकारमयी भाषा के लिए आप बेजोड है। वास्तव मे आप कलम के धनी साहित्यकार है किन्तु आपकी कुछ रचनाओ ने एक विरोध का बवडर पैदा कर दिया था और उनको लेकर हमारे यहाँ काफी चख-चख रही। इधर कई दिनो से आपका कोई ऐसा सुदर संग्रह प्रकाशित नही हो सका जो कि हिंदी संसार मे अपना स्थान ग्रहण करता। जैनेन्द्रकुमार की रचनाएँ दार्शनिकता की पुट लिए रहने के कारण कुछ रहस्यमयी और दूभर सी रहती हैं। आप प्रत्येक कहानी मे एक समस्या सी उपस्थित करते हैं।

आप जैन-दर्शन से भी काफी प्रभावित है। अपनी दार्शनिक पद्धति एवं मनोवैज्ञानिक शैली के कारण आप अपना एक स्कूल ही अलग बना सा बैठे हैं और प्रभाकर माचवे उसमे सम्मिलित किए जा सकते है। भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, प्रेमनाथ अश्क, राजेश्वरसिंह, अज्ञेय, पहाडी, विष्णु प्रभाकर एव ऋषभचरण जैन ने भी सफल कहानियाँ लिखी हैं यद्यपि जैनजी आजकल कहानियो के ससार से बहुत दूर होते जा रहे हैं। वीरेन्द्रकुमार का 'आत्म-परिणय' और उसमे कृत नारी जीवन का चित्रण बरबस मन को अपनी ओर खीच लेता है। कमलाकान्त वर्मा की 'पगडडी' भी एक सफल रचना है। यशपाल क्रान्तिकारी एव राजनैतिक कहानियो मे अनुपम है। हास्यरस की रचनाओ मे परिपूर्णानन्द वर्मा, मिर्जा अजीमबेग चगताई और बेढब बनारसी ने अच्छी ख्याति पाई है। हमारे यहाँ स्त्री कहानी-लेखिकाओ मे सुश्री. शिवरानी प्रेमचन्द, सुभद्राकुमारी चौहान, तेजरानी पाठक, होमवती, उषादेवी मिश्रा, सत्यवती मल्लिक एव चन्द्रावती ऋषभसेन जैन का नाम सुगमता से लिया जा सकता है। चन्द्रावतीजी की 'नीव की ईट' तो सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानियो और स्केचो से भरी हुई 'बहुत दिन जीने वाली चीज' है।

इस युग के हमारे कहानी-साहित्य पर अब बगला का प्रभाव न रहकर अंग्रेजी, फ्रेच, जर्मन और रूसी कथा-साहित्य

का प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर होने लगा है। अब वेल्स, शा, पो, मोपासा, अनातोले फ्रास, गोर्की, टाल्सटाय, तुर्गनेव आदि हमारे साहित्यकारो के आदर्श बनने लगे। उनसे प्रेरणा पा हमारे साहित्यिक लिखने लगे और इस प्रकार हमारा वर्तमान कहानी साहित्य योरोप से अधिकाशतः प्रभावित होने लगा।

अब, इस युग के और सस्कृत-कालीन कथा-साहित्य का भेद हमे स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। सस्कृत कालीन युग की कहानियाँ आज की कहानियो की अपेक्षा अधिक लम्बी होती थी। उनमे ओज, श्लिष्ट, कान्ति आदि गुणो की भरमार रहती थी और उनके विषय भी कुछ अलग से ही रहते थे। आज के पाठकों को इतना समय नही है कि वे कादम्बरी की भाँति अलकारों, समासों और श्लिष्ट पदावली से भरे छः छः पृष्ठो के वाक्यों को पढ़ सके। आज का उनका जीवन इतना व्यस्त हो गया है और जीवन-निर्वाह के लिए स्पर्धा इतनी अधिक हो गई है कि वे अधिक समय नही दे सकते। इसीलिए आज के कलाकार को ऐसी छोटी-छोटी कहानियाँ लिखनी पडती है जो कि सुगमता से एक ही बैठक मे समाप्त की जा सके। अनेको पत्रो मे तो कहानियो के ऊपर उनके पढने के लिए आवश्यक समय भी दिया रहता है जिससे कि पाठक अपने समय के अनुरूप कहानी निकालकर पढ सके। उन दिनो की कहानियाँ ज्ञान-सम्पादन का साधन थी किन्तु आज की कहानियाँ जीवन

की होड से व्याकुल और थके मॉदे पाठको के लिए मनोरजन की एक सामग्री है। तब का कलाकार स्थल-स्थल पर अपने को कहानी के बीच मे ला उपस्थित कर देता था किन्तु आज का कलाकार तो तटस्थ रह एक चित्र-सा खीचता चलता है। वह पाठको को सम्बोधन नही करता किन्तु उसे जो कुछ कहना है तत्काल कह डालता है। उसके पास प्रकृति के आडम्बरपूर्ण वर्णन के लिए फिजूल शब्द नही होते। उसे भाषा के सयम का ध्यान रखना पडता है और सबसे बडा अकुश उस पर आज की भागती हुई दुनिया का होता है। आज के कलाकार को जीवन का जितना गभीर अनुभव होगा, उतना ही अधिक वह सफल हो सकेगा। उसे तो गागर मे सागर भर पाठको के सामने उपस्थित करना है। सक्षेप मे, आज की कहानियो की विशेषता है उनकी सरलता, हृदय-स्पर्शीता, आकर्षकता, मोहकता, जीवन का तद् वद् चित्रण करने की क्षमता और अपने युग के साथ चलने की भावना। जो कलाकार इन गुणो को अपने मे नही ला सकता, उसका इस क्षेत्र मे सफल होना कठिन है, कोई व्यक्ति किसी खास विषय मे ही सफल हो सकता है, प्रत्येक मे नही। कलाकार पैदा होते हैं, बनाए नहीं जाते।

यद्यपि हिन्दी के वर्तमान कहानी-साहित्य का इतिहास अभी २०-२५ वर्षो से अधिक का नहीं है किन्तु फिर भी यदि हिसाब लगाया जावे तो आज कहानी और कविता-साहित्य

जितना अधिक प्रस्तुत हो रहा है उतना अन्य नहीं। आज कहानी की लोकप्रियता काफी बढती जा रही है। माया, रानी, रसीली कहानियाँ, नई कहानियाँ आदि पत्र-पत्रिकाएँ तो केवल कहानी की ही पत्रिकाएँ है। आज जितने अधिक सग्रह कहानियो के निकल रहे है, उतने अन्य विषयो के नही। यह कहानियो की लोकप्रियता का ही कारण था कि पत, निराला, आरसीप्रसाद और अचल ने भी इस ओर कदम बढाए किन्तु इसमे वे सफल हो सके अथवा नही, यह दूसरी बात है। अपनी लोकप्रियता के कारण ही कहानी आज Cheap literature बनती जा रही है। आज हमारे यहाँ सामाजिक एव प्रणय संबधिनी रचनाएँ ही अधिक है, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक रचनाओ का अभाव सा है, यद्यपि इस ओर भी कतिपय कलाकारो का का ध्यान आकृष्ट हुआ है। यद्यपि आज की हमारी कहानियो मे विकास की बहुत गुजाइश है किन्तु फिर भी उनका स्तर बहुत ऊँचा उठ चुका है। कई रचनाएँ तो विश्व-साहित्य के टक्कर की चीजे है। हमारे कथाकारो ने योरोप से प्रभावित होकर भी अपने व्यक्तित्व को नही खोया है और यही उनकी सबसे बडी महानता है जो कि उनकी रचनाओ को अमरता प्रदान करेगी।

कलाकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। उसकी वाणी मे युग की वाणी होती है। यही दशा हमारे आज के साहित्यकारो की भी है। आज हम एक भयकर संक्रान्तिकाल मे से

गुजर रहे है । हमारे चारो ओर का वातावरण विक्षुब्ध और अशान्त है । वर्तमान महायुद्ध का हमारे साहित्य पर भी प्रभाव पडा है और हमारे कथाकार भी उससे अछूते न रह सके । आज के कलाकार जिन मुख्य दिशाओ की ओर सोचते है, वे हैं देश की पराधीनता, स्वातन्त्र्य-सग्राम की तैयारियाँ, मानव-अशान्ति, युद्ध का वातावरण, श्रेणी-युद्ध, गरीबो अमीरो का भेद, छुआछूत का प्रश्न, सामाजिक कुरीतियाँ, राजनैतिक कार्यकर्ताओ के भरण-पोषण की समस्या, पाश्चात्य शिक्षा, नारीत्व का आदर्श, धार्मिक अध-विश्वास, अपने विगत इतिहास का गौरव, हिंसा अहिंसा की होड आदि, और उनकी रचनाओ मे कही न कही आपको ये बाते अवश्य दिखलाई देगी । तभी वह समय का सच्चा प्रतिनिधि हो सकता है । प्रस्तुत सग्रह की कहानियो मे आपको अपने युग की ऐसी ही परिस्थितियो का चित्रण मिलेगा ।

‘आजारे साथी’ एक जरायमपेशा और खानाबदोश कौम का सजीव चित्रण है । अपनी गाडी को छोड ग्राम मे बसने की असमर्थता ही झुकिया के मस्तिष्क की वह विचार-धारा है कि जिसके लिए वह अपनी सब से प्रिय वस्तु का भी वियोग सह सकती है । ‘सुलभा’ आधुनिक शिक्षा, सभ्यता, वासना और फैशन के चक्कर मे पडी अपनी सुखी गृहस्थी को नष्ट करने वाली एक स्त्री का चित्रण, एक स्त्री की ही कलम से बडा सुन्दर बन

पडा है। क्या पाश्चात्य सभ्यता में पली भारतीय पत्नी सुख दे सकती है? इस प्रश्न का उत्तर आपको इस कहानी मे मिल जावेगा। 'कबूतरी' पक्षी जीवन की एक करुणापूर्ण मार्मिक कहानी है और नरक के भय के कारण ही सही यदि हम उनके प्रति कुछ दया दिखला सके तो एक महान् कार्य कर सकेंगे। 'ठेलेवाला' आज के हमारे समाज मे छाई हुई स्वार्थान्धता, असहिष्णुता एव दरिद्रता की ओर सकेत सा करती दिखाई देती है। इसी प्रकार 'शिल्पी की चुनौती' एक नरेश की महत्वाकाक्षा, अपनी महत्वाकाक्षा के कारण प्रजा पर अत्याचार, सुदूर भविष्य के थोथे आश्वासन, साम्राज्यवादी मनोवृत्ति और अपने से श्रेष्ठ किसी को न स्वीकार करने की भावना का एक सफल चित्रण है। काश आज के साम्राज्यवादी शासक अपने हृदय को टटोल पाते। शर्माजी की 'इस्पेक्टर' गुलाम मनोवृत्ति और बाबू कहलानेवालो की दयनीय स्थिति का वास्तविक किन्तु अनुभूतिपूर्ण स्केच है। शर्माजी का कवि-हृदय इसमे भी बोल-सा रहा है। भालचन्द्रजी बाल-साहित्य के सफल लेखक है और उनकी 'जीवन का अर्थ' हमारे सम्मुख मराठा युग का चित्र-सा खीच देती है।

इसी प्रकार नारायणप्रसादजी की 'कुमार' एव नरोत्तमप्रसादजी की 'ज्योत्स्ना' हमे अपने स्वातन्त्र्य युद्ध के लिए उत्साहित करनेवाली वीररसपूर्ण मध्ययुगीन रचनाएँ है। यदि

आज के हमारे कानून वेत्ता एव समाज-सुधारक समाज के गुडा कहलाने वाले अंग के कारणो की खोज करना चाहे तो अवश्य ही 'इक्केवाला' रचना उनकी सहायता करेगी। 'सेवा का मूल्य' हमारे राजनैतिक कार्यकर्ताओ के आश्रितो के भरण-पोषण का ज्वलन्त प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है। क्या हम उनकी यो ही उपेक्षा कर सकते है ? 'गिरेकाट' आधुनिक कपट-कला का एक उदाहरण है और सभवत. आज ससार मे हवन करते ही हाथ जलते है। भिखमगो की समस्या भी इस दरिद्र देश मे कम महत्व नही रखती। 'मनुष्य' शिखरचदजी की एक सफल कृति है। अपने व्यक्तिगत जीवन मे वास्तविक मनुष्यता को अपनाने मे उन्हे जो जो विपत्तियाँ उठानी पडी उन्ही का सजीव किन्तु अनुभूतिपूर्ण वर्णन है; इस रचना में। 'अछूत' हमारी सामाजिक विडम्बना का एक दूसरा पहलू है। 'अमराई मे' जाति-भेद से दूर मानव-हृदय एकता की एक सरस कहानी है। विजयकुमारजी का अपना एक अलग ढग है, अपना एक अलग टेकनीक है और उसी का सफलता के साथ उन्होने इसमे भी निर्वाह किया है। 'प्रतिशोध' हमारे आज के समाज के एक महत्वपूर्ण अंग की मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। 'पाप की प्यास' मे वर्णित यौवन की उद्दाम वासना भी तो उपेक्षणीय नही है। गुलाबचन्दजी की रचना, उसके लिखे जाने के बाद ही होने वाली उनकी पत्नी की मृत्यु के रूप मे एक

भविष्यवाणी-सी बन गई । 'मानव की कहानी', विजयवर्गीयजी का जीवन और मृत्यु की गुत्थी सुलझानेवाला एक सारगर्भित डिसकोर्स है। 'प्राइज कप' प्रकाश की भाँति हमे भी यही सदेश देता है कि हमारे कलाकारो को काता और काचन से दूर रह कला की अमरता की साधना करनी होगी। 'काला साँप' एक उस कामुक का चित्रण है जिसे नारी-जाति को धोखा देने मे कोई झिझक नही । 'गौरी श्याम या श्याम सुदर' आज की पूँजीवादी मनोवृत्ति का चित्रण है, जिससे कि विश्व की ९० प्रतिशत जनता कुचली जारही है—पामाल हो रही है । 'मिट्टी की दुनिया' उग्र-स्कूल की यथार्थवादी कहानी का एक उदाहरण है जिसका कि लेखक भी अपनी रचना मे उग्रजी को याद करने का लोभ सवरण नही कर सका है । इसमे भी पूँजीवादी मनोवृत्ति और यौवन के अल्हड़पन का सजीव चित्रण है । गलतफहमी हास्यरस की एक मीठी-सी चुटकी लेनेवाली ऐसी रचना है जिसे पढकर आप हँसे बिना नही रह सकते । 'चिता' पवित्र प्रेम की अग्नि-परीक्षा-सी, एक स्त्री की लेखनी से, एक विधवा के आदर्श प्रेम और त्यागमय जीवन का सफल चित्रण है। 'मन्दा' कन्या-विक्रय की रूढी पर कठोर आघात करनेवाली एक रचना है ।

'सुबह-शाम' नामक रचना अपराधी और कैदी मनोवृत्ति की जीती जागती तस्वीर है। 'इक्केवाला' की भाँति यह भी

सिक स्थल मे क्या-क्या आलोडन विलोडन हो रहे है, उनका प्रतीक है । इनमे हमारे आज के युग की श्रेष्ठ कही जा सकने वाली रचनाओं के होने का विश्वास, हम आपको दिलाना नही चाहते किन्तु हमारे आज के युग की भावनाओ का, विचार-धाराओं का और अपने जमाने की आवाज की एक धॅधुली-सी छाया के हो सकने की आशा हम आपको दिला सकते है और इसीलिए इसका नाम रखा गया है 'हमारे युग की कहानियॉ' । हमारे आलोचक भले ही इसे हमारी महत्वाकाक्षा कहले ।

हमारे ये साहित्यकार प्रगति के पथ पर है । अभी इन्हे बहुत से बीहड वनो को पार करना है, घाटियो मे से गुजरना है, भयकर खाइयो को लॉघना है, अनेको कठिनाइयो का सामना करना है और सासारिक उत्थान-पतन को देखते हुए अपने ध्येय तक पहुॅचना है तभी वे सत्य, शिव, सुन्दरम् की रचना कर सकेगे । आज तो वे एक दुर्गम पथ के पथिक है, किन्तु फिर भी उनका भविष्य उज्वल है । उनकी कृतियॉ शीघ्र ही साहित्य मे उचित स्थान पावेगी । अन्त मे, यह सग्रह वास्तव मे जिनका है उन्ही मित्रवर शिखरचदजी जैन को धन्यवाद देना, सभवतः उनका मूल्य कम करना होगा किन्तु इस सग्रह के लिए जिन कलाकारो ने अपनी रचनाएँ देकर हमे अनुग्रहीत किया है, उन्हे धन्यवाद दिए बिना भी हम नही रह सकते । प्रूफ की भूलो के लिए क्षमाप्रार्थी है ।

—सूरजमल गर्ग

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
हमारी कहानी साहित्य		१ से २६
१ आजा रे साथी ?	धन्नालाल शाह	१
२ सुलभा	सरोजरानी भाटिया	९
३ कबूतरी	स्वरूपकुमार गागेय	२१
४ ठेलेवाला	माणिकचंद पाड्या	२५
५ शिल्पी की चुनौती	वीरेन्द्रकुमार सेठी, एम. ए.	३०
६ इंस्पेक्टर	रामचन्द्र शर्मा 'नवजात'	३८
७ जीवन का अर्थ	भालचन्द्र जोशी, बी ए, साहित्य-रत्न	४१
८ कुमार	नारायणप्रसाद शुक्ल, विशारद	४८
९ इक्केवाला	महेन्द्रकुमार 'मानव' एम. ए	५४
१० सेवा का मूल्य	जगन्नाथ चौधरी 'इच्छुक'	६०
११ गिरे काट	निहालचन्द 'अभय'	६६
१२ मनुष्य	शिखरचन्द जैन, साहित्य-रत्न	७१
१३ अछूत	राजरानीदेवी भार्गव	८३
१४ अमराई में	विजयकुमार मुंशी, बी ए., एल्.एल्. बी, सा.-रत्न	९२
१५ प्रतिशोध	रामनाथ शुक्ल, साहित्य-रत्न	९७

१६ पाप की प्यास — राजेन्द्रकुमार सेठी — १०४
बी. ए.
१७ पतिदेव ! प्राणनाथ ! — गुलाबचन्द गोयल — ११५
साहित्य-रत्न
१८ मानव की कहानी — रामनारायण विजयवर्गीय — १२४
बी. ए, एल्एल् बी, सा. रत्न
१९ प्राइज कप — भगीरथ प्रेमी — १२७
बी. ए, एल्एल् बी
२० काला साँप — राय दुर्गाप्रसाद 'रस्तोगी' — १४०
२१ गौरी श्याम या श्याम सुदर — शिवनारायण उपाध्याय — १५०
२२ मिट्टी की दुनिया — महेशशरण जौहरी 'ललित' — १५३
२३ गलत फहमी — श्रीनिवास जोशी, — १६४
बी. ए.
२४ चिता — कमलादेवी वर्मा, — १६९
विशारदा
२५ ज्योत्स्ना — नरोत्तमप्रसाद भटनागर 'शान्त' — १८२
२६ मन्दा — वैद्य सीताराम अजमेरा — १९९
२७ सुबह-श्याम — रामनारायण उपाध्याय — २०३
२८ श्रीकांत — श्यामसुंदर व्यास — २०७
२९ जीवन की भूल — पुरुषोत्तमदास कठल — २२१

जीवन की मार्मिक व्यथा को व्यक्त करनेवाली सरस कहानी

आजा रे साथी !

चलती के नाम गाड़ी की परिभाषा यदि सही है तो मृत्यु के रूपान्तरित शब्द की उत्पत्ति के साथ ही झुकिया ने अपने आपको सदैव चलते ही पाया है। गाड़ी भी चलने वाली उसकी जीवन-गति ने मकानों और महलों में रहने वालों को, मनुष्य की श्रेणी में कभी स्थान दिया हो, उसे याद नहीं पड़ता और वन- ग्रामों से घिरी उन्मुक्त हवा और खुले आकाश के नीचे चलने वाली उसकी गाड़ी में घर की ममता कभी उत्पन्न ही नहीं की। कभी कभी घर बनाकर उसमें रहने की कल्पना जितनी ही सुखकर

उसे लगती, अपनी गाड़ी छोड़कर; घर में जा बसने की भावना उसके लिए जीवन समाप्ति का दूसरा नाम था। रथ से बड़े-बड़े चके युक्त उसकी गाड़ी जब स्थानान्तरित होती तो कुँवार की छिपती चाँदनी मे, वह पिता को गाड़ी में सुला, बैलो की रास थाम, पहियों की गड़गड़ाहट, गाडी की चुरमुराहट और बैलों की बोझ से भरी स्वासों में अपनी निस्वासों को मिला अनुभव करती, उसका जीवन–चल रहा है–गाड़ी के साथ–अबाध्य–अवगुंठन रहित।

जिस दिन रात्रि के पिछले पहर में, गाँव से दूर गाड़ी के नीचे झुकियाने सर्व प्रथम डूबते हुए चन्द्रमा के दर्शन किए थे, उससे सोलह वर्ष बाद, उसे लगा कि उसकी गाड़ी वैसी ही चल रही है और वह अपने बचपन से बगावत कर अरमानो से भरे एक नए संसार की ओर कदम बढा रही है।

सुन्दर-असुन्दर में, तार्किकों के बीच एक विवाद खड़ा कर देने वाली झुकिया अपनी गॅवारी भाषा में सोचती, "नहीं री ! ऐसा भी हुआ है कहीं, दुनियाँ है यह तो–गाड़ी है–ऐसी ही चलती रही, चलती रहेगी" । और दूसरे ही क्षण विचार हो आता "ऐसा भी हुआ है कहीं ! क्या सोचता होगा जग्गू ? वह बलों की रास तान देती; वे आगे बढ जाते। एक सुषुप्ति और वह बढ़ती चलती इसी संघर्ष में। उसने जीवन की परिभाषा जीवन के रूप में सोची थी। जीवन के पार वह देख सकती थी किन्तु

जीवन के पार होने की किसी क्रिया में अभी वह स्वस्थ दृढ़ता नहीं कर पाई थी। काफिलों का यह कारवां जीवन की दौड़ मे इसी तरह दौड रहा था। झुकिया की गाडी उससे लगी जगू की गाड़ी और फिर गाड़ियों की एक लम्बी क्तार—अवरुद्ध—विश्व से अलिप्त अपने एक से चलने वाले संसार के साथ।

[२]

जगू का विश्वास है, "भावनाओं का नाम जीवन है—जब जिन्दगी है। विचारो की क्रिया-प्रतितक क्रियाओं की उसे चिंता नहीं। वह गाड़ी के इस जीवन से ऊब चुका है", जहाँ जाओ भट्टी खोदो। हँसिया हथौडा साथ हैं। "मैं इसे और अधिक नहीं चला सकता झुकिया।" मन ही मन वह जैसे झुकिया से अपने इस जीवन के प्रति घृणा उत्पन्न कर रहा हो। लोहे का काम करते करते उसका जीवन, लोह सा अस्थिर नही—तपे हुए लोहे पर घनो की चोट से, वस्तु निर्माण की पूर्वावस्था सा वह एक उज्वल आशामय भविष्य बना रहा था। सोचता वह, "मेरी गाडी अब अकेले नही चल सकेगी। किसी ग्राम में बस जाऊँगा। मै रहूँगा और. ? और उसे तो गाड़ी घर घर लिए फिरना पसद है।" सुषुप्ति की एक अवस्था होती। बनते-बिगडते स्वप्नों से बँधा किसी अँधेरी रात में, झुकिया की गाड़ी के पीछे अपनी गाडी लगा, कल्पना करने लगता, "आखिर मेरा पथ वही निर्दिष्ट करती रहेगी? अलग अलग गाडी पर ही जाने कहाँ ले जाने वाली

सडक पर ही जीवन चलेगा ”। जगू की जिन्दगी का यही सिलसिला रहता। क्षणों की कल्पना ने जहाँ पर बसाया था, दिनों, महिनों और वर्षों की साधना भी उसे अपनी गाड़ी नहीं छुडा सके। और न दोनों एक गाड़ी पर ही बैठ सके। जिन्दगी चल रही थी—चल रही थी। कितने ही प्रभात आए, कितनी ही संध्याये पास से निकली, किन्तु उनके लिए कभी एक साथ न सुप्रभात और न सुहावनी संध्या हुई, जब वे अपने स्वप्नो को सत्य कर सकते। झुकिया ने सोचा नहीं, गाड़ी से परे भी जीवन है—तृप्ति है। जगू ने कभी महसूस नही किया, “ जिन्दगी भर गाड़ी पर अकेला चलना भी जीवन का रोमान्स है ”।

[२]

दुख मे से किसी के सौभाग्य को जगाने वाली और सुख मे से किसी के दुर्भाग्य को पैदा करने वाली एक दिन की सध्या—तारो रहित—पानी के बादलों से भरी चढ़ती संध्या एक क्षण लायी जगू के स्वप्नों को सही करने और झुकिया को सदैव दर्द भरी स्मृति रखने उसके पिता की मृत्यु—ले-उसके चिर-चलते-हुए जीवन—से हँसिया-हथौडा छुड़ाने के लिए। पिता की निर्जीव देह को सामने रख वह सोचने लगी जगू की बात और जगू सोचने लगा झुकिया के हृदय का झुकाव सारी रात दोनो एक साथ बैठे। एक चेतना रहित, दूसरा अचेतनता को जाग्रत करता सा। काफिले के गाड़ी वाले सो रहे थे अपनी अपनी गाड़ी के

नीचे। सुबह श्मशान से लौट, देर बाद जग्गू ने बैलो को दाना पानी दिया। वह अपने एकाकीपन को सोच रही थी। सोचती रही वह, 'मेरे हाथो ने कडे से कड़ा काम किया है। तपते हुए सूर्य की दोपहरी मे, भट्टी के सामने बैठकर गेती, फावडे, कुदाली और हँसिया बनाए है, लेकिन पिता की अनुपस्थिति मे बिना घनो की चोट में वस्तुओ को आकार कैसे दे सकूंगी।

जग्गू आज बोलने लगा.—गाडियो का एक २ पहिया मिला एक गाडी बनाओगी ?"

"नहीं तो" फिर सोचा उसने "मैने यह ठीक नहीं किया। जग्गू मेरे लिए सब कुछ कर सकता है, वह घन चलाए मै आकार दूँ।"

"तो मेरी ही गाडी मे आ बैठो न ?" बोला जग्गू।

"तुम मेरी गाडी में नही बैठ सकते जग्गू ?"

जग्गू, झुकिया पर इस विरोध के बाद भी अपना अधिकार मान बैठा था। थोड़ा क्रोध से बोला वह, "तो आखिर जिन्दगी इस तरह गाड़ी मे ही चलती रहेगी क्यों न ?"

हाँ, ना की रस्सियों पर झूलता उसका हृदय कुछ भी नहीं कह सका। दो बड़ी २ आँखें उसकी ओर स्थिर हो एक टक देखती रहीं। स्वयं मे उलझती सी। जग्गू ने उनमें मे कुछ पढा, कुछ समझा। जो कुछ वह उतार सका, उसने कहा, "चलो न झुक्कू। मै घर बनाऊंगा। ग्राम में रहेगे।

मैं घन चलाऊंगा, तुम वस्तुओं को आकार देना।" भावनाओ के शीश महल इतने बढ़े कि उसने झुकिया को रानी बना सारे विश्व के शासन की बागडोर उसके हाथ मे दे दी। वह जो कुछ इसमे से ले सकी वह इतना ही कि, "मुझे घर मे रहना पड़ेगा। घर की ममता, जगू का स्नेह, मे इन सब को अपना सम्बल क्यो मानू? जगू की क्रिया शीलता पर उसे अविश्वास नहीं। एक आघात पहुचता उसे जब वह यह भी सोचती, "मै घर वाली बनूंगी मालकिन" ममता भरे उसके पिछले जीवन ने फिर एक बार उसका हृदय-द्वार खटखटाया और उसने कह दिया, "किन्तु, मुझे तो यह सब कुछ नहीं चाहिए जगू।" जगू कुछ कहता इसके पूर्व ही उसने बैलो पर गाडी की धुरी रखदी। चलते फिरते घरों को गाडी पर लेकर; ग्राम ग्राम मे लोहे के औजार बेचने वाले लोगो की यह जमात आज जब चली तो झुकिया ने अपने आप को विना जगू के पाया। सबसे आगे रहने वाली गाड़ी आज सबसे पीछे थी और जगू? उसने चलते चलते कहा, "कभी फिर आओ तो तुम्हारा घर है, इसी ग्राम मे मै रहूँगा तुम रह सकतीं झुकिया तो अच्छा था!" उसकी गाडी चली जारही थी। वह पछी बार बार देख लेती थी—साथी की ओर। जगू स्तब्ध था—सन्ध्या मौन। चलती हुई गाडी की चुरमुराहट, फिरते हुए पहियों की गडगडाहट बैलो के स्वाँसो मे अपने निश्वासों को मिला वह अचल थी—अस्थिर। गाड़ी धीमे धीमे चली जारही थी।

गाव के मोड पर से उसने बैलों की रास बाँध दी । जमात की गाड़ियों के बैलो से कदम मिलाते बैल चले जारहे थे । वह चेतना हीन थी । ओठो से बाहर न निकलने वाली आवाज मे कहा, " जग्गू आजा रे साथी ! किन्तु न तो जग्गू ही आया और न वह स्वयं लौट सकी । झुकिया ने एक विश्वास पाल रखा था जग्गू उसका ही है । जग्गू ने भी ऐसा ही सोचा था, " झुक्कू सिर्फ मेरी ही है । " बिदाई की बेला की उस रात में, झुकिया ने आत्म समर्पण किया था । पिता से सम्बन्ध छोड पति से बन्धन बाँधे थे । यौवन-मन्दिर उन नेत्रो ने अपनी भाषा में कहा था,— " देखो जग्गू, कहीं विश्वास घात न कर बैठना । " जग्गू ने उसकी इन मनुहार भरी आँखो की सजा अपने अधरो से झुकिया के अधरों को दी थी । " एक रात—वह एक निस्तब्ध रात, प्रातः ही प्रथम और अन्तिम रह जायगी यह मैंने काश ! सोची होती । झुकिया मैं अभी भी सत्य हूँ । जग्गू गाडी की उडती हुई धूल को देखता रहा । दूर तक निश्चेष्ट हो उसने पुकारना चाहा, " ठहरो झुकिया मैं आता हूँ । " वर्षों बाद लुहारों की वह जमात फिर एक सन्ध्या उसी ग्राम में ठहरी, झुकिया का लडका लक्खू १२ वर्ष का था—जग्गू सा ही आत्म-विश्वासी । बोला वह, " माँ यह गाडी की भी जिन्दगी है ? ग्राम में न बस जाएं इसी । तू आकार देना, मैं घन चलाऊंगा । " झुकिया कैसे कहती

उसने यही तो जग्गू का चिर वियोग सहना स्वीकार किया था। उसने कहा, "बेटा, यह मुझसे न हो सकेगा" दूसरे दिन प्रातः फिर जमात चलने की तयारी करने लगी।

अपनी सूनी कुटिया मे जग्गू बीमार था। पिछले एक माह से वह रोज सोचता, "झुकिया यदि आजाए! वह जरूर रह जायगी, उसी का घर है यह"। जब सुना झुकिया ने जग्गू बीमार है, साथियों को छोडकर वह आज रात भर के लिए रुक गई—सिराने बैठ कर उसके मस्तिष्क पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, "बहुत दु:ख पाया तुमने। एक जगह रहने से दिल नही भरता। चलो न गाड़ी तैयार है।" वह नही चाहता था झुकिया को और अधिक दूर रखना। बोला, "अब तू न जा सकेगी झुको, मैं मर रहा हूं और तू जाने की सोचती है। तुझे याद है उस रातकी।" झुकियाने कहा मैंने तुम्हारे लिए कभी बुरा नही सोचा है। यह तुम्हारा घर है और मेरे घर क्या होगा?" जग्गू और अधिक उस हठीली स्त्री से क्या कहे। सारे रात दोनों चुप चाप रहे। दोनो का स्वर्ण प्रभात जाग रहा था। दूसरे दिन सवेरे ही, लक्खू से बोली वह, "गाड़ी तैयार करो बेटा, जग्गू नही तुम तो हो।" जग्गू यह सब कुछ सुन रहा था। लक्खू गाड़ी हाँक रहा था—झुकिया जग्गू की ओर खुली आँखो से अनवरत देख रही थी। प्रातः बेला में बैल धीरे २ जा रहे थे। जग्गू दौड़कर उसकी गाडी मे बैठना चाहता था, झुकिया कूद कर जग्गू के घर आना चाहती थी। गाड़ी बढ़ती ही गई। दूर से झुकिया ने एक बार फिर दोहराया आजा रे साथी!

—श्री धन्नालाल 'शाहू'

सुलभा

"डिअर ! तुमने कितनी देर करदी। कब तो तैयार होगे और कब चलोगे ?" कहते हुए सुलभा ने ड्राइंग रूम में प्रवेश किया। "अभी तैयार हो जाता हूँ। क्यों क्या सिनेमा चलना है ?"

"हाँ, और नहीं तो क्या, कल से प्रोग्राम बना रखा है और आपको तो उसी दिन देर से आना होता है" सुलभा ने तुनक कर कहा।

इसका तुनकना देख प्रबोध हँस दिया और उस हँसी से सुलभा के तेवर और चढ़ गये। "बस, तुम्हें तो सिवाय

हँसने के और काम नहीं। कभी कभी तो सिनेमा के लिये कहते हैं तो उसी दिन देर करके आते हो।"

टाई खोलता हुआ प्रबोध बोला; "मगर, सुलभा तुम्हारी भी कैसी खराब आदत है कि मैं अभी काम पर से आरहा हूँ; तुम्हे न मेरे नाश्ते की फिक्र है, न चाय की। रोज ही तो मैं इस समय आता हूं। अभी तो ६। बजे हैं, ७ बजे शो शुरू होता है। काफी वक्त है, मगर एक तुम हो कि सिवाय तकाजों के कुछ बात नहीं।"

"यही तो, एक दिन सिनेमा को कहा तो इतनी लेक्चर बाजी शुरू होगई! मत चलो, न चलना हो तो। शादी क्या की, गुलामी करली। पापा को मै क्या इतनी भार होगई थी कि लाकर कुए में डाल दिया। सुलभा ने आँसू पोछने शुरू किये।

आँसू देख प्रबोध को भी गुस्सा आगया। झल्ला कर बोला; "अब बस करो, इन ढोंगो को बंद करो। पापा को तुम भार न थीं, न पापा ने तुम्हें कुए में फेंका। अगर कुए में गिरी हो तो अपनी मरजी से, अपनी आँखों से देख कर,—अपनी पसंद से-समझीं सुलभा देवी, क्या साल भर की ही बातें भूल गयी?"

सुलभा मुँह बना कर चली गई और अपने बेड रूम में जाकर तकिये पर मुह डाल कर पड़ गई।

पंद्रह मिनिट बाद तैयार होकर प्रबोध ने आवाज दी "सुलभा चलो—वक्त हो गया।" जवाब न सुन पाकर

वह सुलभा के बेड रूम में गया। देखा, मुँह ढँके सुलभा पड़ी है। देख कर प्रबोध को ख्याल आया। कुछ भी हो बेचारी ने हमारे कारण मा बाप सब छोड़े। आखिर हम से लाड़ न पावेगी तो पावेगी कहाँ? वह सब अपनी तकलीफें भूल गया। झुक कर सुलभा के सुंदर मुँह को चूम बोला,—
"डार्लिंग उठो, देखो साड़े छः बज गये, फिर जगह भी अच्छी न मिलेगी।"

सुलभा ने देखा पति देव नरम हैं, खुशामद भी कर रहे हैं और टकटकी लगाये उसे देख रहे हैं, तब उस मानिनी रूपगर्विता को अपने रूप का गर्व हो आया। मन में उस भोले सीधेपति के भोलेपन पर हँसती हुई मुँह बनाकर बोली "रहने दो अपने लाड को. मैं ऐसी आउटिंग से बाज आई जिसमें पहिले आँसू बहाने पड़ें, मुझे नहीं जाना।

प्रबोधने जरा गुदगुदा दिया। "तंग न करो, आपको जाना हो चले जाओ। मुझे पड़ी रहने दो। किस्मत में मेरी अगर रोना लिखा है तो रोऊंगी।"

"आखिर बात क्या है! इतनी क्यों बिगड़ती हो? आखिर मैं भी आदमी हूं। थका हुआ कोर्ट से आया, न चाय, न नाश्ता—गुस्सा आ गया, मगर तुम भी तो कम न बिगड़ी थीं। अब चलना हो चलो वरना रहने दो।"

सुलभा ने देखा ज्यादा खींचने से डोर अब टूट जावेगी। उठते हुए बोली, जिस बात में मुझे शौक होता है उसमें तुम्हारा इनडिफरेंस खटकता है। अंदर चलो मैं तो तैयार हूं और दोनों सिनेमा चल दिये।

बगले के गार्डन में सुंदर हरी लॉन पर कई कुर्सियां पड़ी है ! सुलभा ने भी हरी जार्जेट की साड़ी पहिन रखी है। आज उसका जन्म दिन है। इसी उपलक्ष में गार्डन पार्टी जमा है। एक के बाद एक आमंत्रित सज्जन अपनी अपनी पत्नियों के साथ आरहे हैं। कुछ कुँवारी बालायें हैं, तो कुछ कुँवारे लड़के भी। मगर अभी तक प्रबोध का पता नहीं, सुलभा अंदर है। अंदर गरमी हो रही है। उसके मिजाज का पारा बहुत तेज़ है। मगर फिर भी अपने को शांत रखे आमंत्रित सज्जनों से बात कर रही है। मिस्टर और मिसेज सिन्हा हैं। मिस्टर तिवारी भी अपनी श्रीमती के साथ हैं। मिस बीना, मिस माधुरी, कुमारी सरला वगैरह भी हैं। खूब कहकहे लग रहे हैं। मगर सुलभा के मुँह पर क्रोध के काले काले बादल छाये हुए हैं। इतने में एक सिंधी युवक बडे ही ठाट के साथ आता है।

"हल्लो ! सुलभा, अभिनन्दन ! "

" शुक्रिया "

मगर आज के शुभ दिन इस चाँद से मुँह पर बादल क्यों ? क्या बेरिस्टर साहब कहीं गये है ?

इतनीसी सहानुभूति पाकर सुलभा क नयनों में आँसू आगये। बोली, "मिस्टर कृपलानी ! क्या करें ? भारत में स्त्रिया गुलाम हैं। मरदोंने समझा है कि वे पत्थर की हैं। इनके दिल नहीं। देखो आज मेरी वर्षगाठ है और प्रबोध जो कोर्ट गये हैं सो अभी तक नहीं आये। कोर्ट तो ५ बजे

ही बन्द हो जाती है। ७ बज गये और पता नहीं है। सब लोग आगये हैं। क्लब में क्या करते होंगे? पत्नी की शादी के बाद की प्रथम जन्मतिथि पर ही पतिदेव नदारद।—”

राम कृपलानी—मगर, सुलभा देवी हो सकता है कि उन्हें कुछ और काम आ पडा हो। आप चिन्ता न करें, आते होंगे। इस सुंदर मुखडे को छोड़ दूर रहने की उनमें शक्ति नहीं। अभी दो माह पहिले आप बनारस अपने पिता के यहाँ गई थीं तब देखा था, उनका कितना बुरा हाल था।

“ घूमते होंगे। अभी तो सिवाय जी जलाने के और कुछ नही करते। मैं तो अब ऊब उठी हूँ इस जीवन से।”

राम ने एक फूलों की माला जो अपने साथ लाया था और जिसे अब तक संकोच वश न दे सका था, सुलभा के गले मे डाल, कहा “ अपनी बीसवीं जन्मतिथि पर इस तुच्छ दास की तुच्छ भेंट स्वीकार करो देवी, यह ना चीज़ आपके अगर कुछ काम आयगा तो अपना धन्य भाग्य समझेगा। जीवन मे ऊबने से तो काम नही चलता। जीवन मे और भी बहुत रस है। उसने सुलभा के हाथ अपने हाथ मे ले लिये और झुक कर उन गौर वर्ण हाथों को चूम लिया।”

“ अरे, सुलभू! आज ही सारा लाड़ क्या राम पर ढाल दोगी और हम चाय भी न दोगी?—कहती हुई सरला उधर आ गई, बोली—“ वहा प्रबोध बाबू तुम्हारी राह देख रहे हैं और तुम यहां मस्त हो।”

अरे ! कहती हुई सुलभा राम पर एक अजीब नजर डाल कर उसके दिये हार को अपने जूडे में लपेटती वहा से चल दी। राम भी थोड़ी देर सुलभा की सुंदर देह-लता को अतृप्त नयनों से देखता रहा, फिर वह कुटिल हँसी हँस कर लान की ओर चल दिया।

× × × ×

"आखिर तुम्हें मेरा इतना अपमान करने मे क्या मजा आता है ?" महमानों के जाते ही सुलभा बरस पड़ी।

"मगर मैंने तो तुम्हारा कोई अपमान नहीं किया।" प्रबोध चकित हो बोला।

"तब तुमने इतनी देर कहाँ की। तुम जानते थे कि आज मेरी वर्षगांठ है, और मेरे सब दोस्त आने वाले हैं। तुमसे भी मैंने सबेरे जल्दी आने को कहा था, मगर आप आये साढे सात पर। आखिर मै भी तो सुनू कि आप थे कहा ?"

"रानी—अफ़सोस है कि मै वक्त पर न आसका, मगर सचमे मुझे बड़ा जरूरी काम आगया था, इसीसे देर होगई। दूसरे मुझे तुम पर पूरा भरोसा था कि महमानों का तुम बराबर एन्टरटैन करोगीही।"

"आखिर हमसे ज्यादा प्यारा आपको अपना काम है। इतनी ही हमारी कीमत है। चलो अच्छा है, मालूम तो होगया कि सालभर मे हमारी कितनी कीमत रह गई।"

"अरे रानी ! क्या आज के दिन भी लड़ती रहोगी ?"

अरे अपने दोस्तों की भेंट तो दिखाओ वह साडी तो बड़ी सुन्दर है। कहाँसे आई ! ”

“ अम्मी ने भेजी है ! ” अच्छा लो देखो कह उसने सब चीजें जो आज उसके मित्र लाये थे दिखा दीं।

“ क्या राम ने कुछ न दिया, यू तो बड़ा सम्पत्तिवाला और दिमागी है। ”

“ वह बेचारा क्या लाता ? अभी कमाता ही क्या है ? ” उस हार के पहिनाने के समय की बात याद आकर सुलभा का मुंह लाल होगया और अपने को सँभालते हुए बोली, “ मगर तुमने भी तो आज मुझे कुछ न दिया। औरों से क्या परेखा ? अब तुम्हें ही इतनी चाह न रही। ”

“ हाँ रानी ! मैं तुम्हे क्या दूं ! तुम्हें मेरी दी हुई चीज़ की कीमत भी तो नहीं ! ”

“ ऐसा क्या दे डाला ? तुम्हारे साथ तो बस ....खैर अपनी अपनी किस्मत। साल भर हो गया। यूंही और भी जीवन बीत जावेगा। ”

“ क्यों ! मैंने तुम्हें क्या कभी कुछ नहीं दिया ! ” “ देखो, मिस्टर और मिसेज सिनहा गरीब हैं तो क्या ! तुम जैसी बढ़िया बढ़िया साडी जम्पर और चीजें नहीं तो क्या ? तुमसी वह सुन्दर नहीं तो क्या, मगर दोनों ने अपने अपने दिलों की अदलाबदली करली है—कितने सुखी संतोषी हैं, तुमने तो अपना दिल मुझे न दिया मगर मेरा लेकर उसे मसल दिया लगता है। सुंदर मुंह के नीचे कुटिल दिल

रहता है। माया ममता विहीन, मात्र फैशन का गुलाम—"

जेब से एक सुन्दर मखमली डिब्बी निकालकर उसे सुलभा के हाथ मे देकर कहा—"लो यही मेरा जरूरी काम था। इसी को देखने, पसंद करने में इतनी देर लग गई। देखो पसंद आती है या नहीं!"

सुलभा ने अपने नयनों मे मादकता भर एक कटाक्ष प्रबोध पर फेका और डिब्बी खोल कर देखा सुन्दर जडाउ टोप्स।

फौरन पहिन कर शीशे में अपना मुँह देखा, मगर आँखो के सामने नाच गई रामकृपलानी की अदा भरी मुसकान। एक क्षण काँप उठी। फिर प्रबोध के पास जाकर उसके गले मे हाथ डाल कर बोली, "डियर तुम्हे चिढ़ाने मे मुझे बड़ा आनंद आता है, मगर तुम हो बड़े गुस्सैल। मज़ाक मे ही गरमा जाते हो। देखो यह टोप्स कितने अच्छे लगते हैं।"

भोला प्रबोध-सुलभा की रसीली बातों, अदाओं मे फँस गया। उसकी विषभरी माधुरी पर अपना अंतर्दाह भूलगया। सुलभा को हृदय से लगा, शाति की साँस ली। बोला—"रानी! तुम्हे पा मैं तृप्त हूँ। मगर कही, कभी मेरे दिल को तोड मत देना, रानी!"

+ + + +

टन् टन् टन्—

टेलीफोन की घंटी बज उठी।

"हलो!" सुलभा ने रिसीवर पकड़ कहा।

“ कौन ! सुलभारानी ! ”

‘हाँ’, मै सुलभा, कौन, राम हैं क्या ? ”

“ क्या बैरिस्टर साहब कहीं गये हैं ? मैंने उन्हें शाम को स्टेशन पर देखा था। ”

“ हाँ वे इलाहाबाद गये हैं। दो दिन बाद आवेंगे। ”

“ आप क्या कर रही हैं ? ”

“ कुछ नहीं तबियत नही लगती। ”

“ तो चलिये सिनेमा चलें। ”

“ न रहने दो तबियत नहीं लगती, ” “ अरे अभी से यह परेशानी फिर ये दो दिन कैसे कटेंगे ? ”

“ और यह बात नही, अगर वे यहां होते तो कौन बगल में बैठे रहते। कुछ यूंही दिल उदास है ! ”

“ तबतो जरूर सिनेमा चलिये, और हाँ सुनिये खुशखबरी देता हूँ, मुझे कानपुर के स्कूल मे मास्टरी मिल गई है। कलही से चार्ज लेना है, सो आज तो जरूर चलिये। ”

“ अच्छा बधाई। जरूर चलो। तुम आओ मैं तैयार होती हूं। ”

५ मिनिट बाद राम के आते ही सुलभा भी तैयार होकर साथ चलदी। पीली जार्जेट की साड़ी में रूपसी नारी का सौंदर्य मचल पड़ा।

रास्ते में बोली—“ कौनसी फिल्म है ? ”

“ बंधन ”

“ अच्छी है ? ”

“ देख लेना, बॉम्बे टॉकीज की फिल्म और अशोक लीला की जोर्डी फिर पूछना क्या ! ”

सिनेमा से लौटने में सिनेमा को डिसकस करते दोनों सुलभा के यहाँ आये। आकर सुलभा ने नौकरानी को आवाज़ दी, कहा दो प्याले कॉफी लाओ। आज सुलभा के अंग अंग से मस्ती छूट रही थी। चिडिया सी चहक रही थी। राम अपने अतृप्त नयनों से देख रहा था। दिल में एक कसक थी। कॉफी पीकर राम चलने को उठा तो सुलभा ने उसका कोट पकड कर कहा, “ राम रातको तो अकेले डर लगता है। न हो तो गेस्ट बेड रूम में तुम आज यही सोजाओ। ”

राम ने चकित हो सुलभा की तरफ देखा। उसके नयनों में एक अजीब चमक देखी। देखा अजीब-अनोखा नशा— राम कह उठा, “ अच्छा। ”

तो बैठो मैं देख आऊँ सब ठीक है या नहीं। और सुलभा-चंचला सुलभा मुस्कराकर चली गई। उस मुस्कान मे राम का आमंत्रण दीखा, मानों माली अपने उद्यान मे आने को बुला रहा हो।

थोड़ी देर मे सुलभा आई। रात के वस्त्र श्वेत साडी में अपने गौर रंग को और आलोकित करती हुई स्लीवलेस जंपर पहिरे थी। जंपर के अंदर से पूर्ण विकसित यौवन छलक रहा था। उसकी आँखो में मादकता थी। रामने देखा और सुलभा का हाथ पकड कर बोला, “ कितनी सुन्दर हो तुम। ”

"सच"—सुलभा ने अपने स्वर को मादक बना पूछा, "मेरे दिल से पूछो रानी!" और सुलभा उस पर लुढक गई। उसके वस्त्रो के कीमती सेंट ने राम को पूरा पागल बना दिया।

दोनो ज्ञान विहीन हो उठे। उसी रात सुलभा ने अपना अमूल्य सतीत्व अपनी आधुनिक सभ्यता, अपनी वासना पर न्योछावर कर दिया।

फिर तो यह ढंग चलता रहा। अत मे.—

मेटरनिटी वोर्ड के स्पेशल रूम मे सुलभा एक बेड पर सोई हुई है। पास मे एक सुदर शिशु सोया है। नवमास प्रबोध के बड़े अच्छे कटे। प्रबोध-प्रेमी सरल हृदय प्रबोध—पिता बनने की लालसा में मस्त था, आज वह अभिलाषा सफल हुई। उसकी प्रिय सुदर पत्नी ने आज उसे एक सुदर खिलोना उपहार दिया है। अभी अभी नर्स ने आकर कहा था। मिस्टर महता बधाई है। शिशु बड़ा सुंदर है। लड़का है।

प्रबोध ने रूम मे प्रवेश करते ही सुलभा के कपोल पर एक चुंबन कर कहा Darling you are a wonder और फिर धीरेसे शिशु का मुँह देखा—बडी देर तक देखता रहा और उसका मुँह उतर गया। हृदय मे शंका का कीट उत्पन्न हुआ। शिशु का मुँह हूबहू राम कृपलानी की प्रतिच्छाया थी!

उस दिनसे उसका सुलभा के प्रति व्यवहार बहुतही शुष्क किन्तु सभ्यतापूर्ण था। सब कर्तव्य जो पति और पिता को करने चाहिये वह करता, पर सुलभा के सामने आते ही विषाद की घनी छाया उसके मुँह पर फैल जाती। शिशु को सामने देखते ही घृणा से उसका मन भर जाता। इसी प्रकार ६ महीने बीत गये।

एक दिन सबेरे उठकर देखा तो पलंगपर सुलभा न थी; और न पालने मे शिशु। कानपुर तार देकर पूछा। मालूम हुआ रामे कृपलानी ने वहाँ की नौकरी छोडदी है और कहीं चला गया है।

भग्न हृदय प्रबोध सिरे थाम कर बैठ गया।

सरोजरानी भाटिया

पक्षी जीवन की एक मार्मिक कहानी

कबूतरी

इसके बाद मिसरानी घिर जातीं, बच्चे उनसे शकर की गोलियाँ माँगते और वे अपने पड़ोस के गोकुल व मुन्नी पर विशेष कृपा करती हुई, हाथ की सारी निधि बच्चो में लुटाती हुई घर के कामों में व्यस्त होजाती थीं।

जब सन १९३४ के सुबह बम्बई ब्राडकास्टिंग स्टेशन से मैं बीन का प्रोग्राम देकर घर आया, तो सुना कि मिसर जी किसी घोर इल्जाम में फँसकर जैल चले गये है और मिसरानी घरसे बाहर नहीं निकलतीं; न किसीसे हँसतीं, न किसीसे बोलतीं और न कबूतरों का महा-मेला ही अब उनके आगन मे लगता। मै थोड़ा हल्का होकर मिसरानी के घर पहुँचा। सहानुभूति का स्वर छेडकर मैंने, उनसे मिसरजी के विषय मे सारी बाते पूछीं और जब वहाँ से बाहर निकला तो मैंने देखा कि सैकडो कबूतरों का एक झुण्ड आकाश मार्ग से उतरा और फिर धरती के नज़दीक से गुजर-कर ऊपर उड़ गया। मिसरानी जाफरी के छेदों से देखती रही। किन्तु यह क्या! एक छोटीसी कबूतरी उडते उड़ते ठीक मिसरानी के दरवाजे पर गिरी। बडी प्यारी कबूतरी थी— निखरा हुआ रग था और पांवों में पीतल के छोटे-छोटे छल्ले झलक रहे थे। वह किसी की पाली हुई–चाही हुई कबूतरी मालूम होती थी। मैं बेचारी को उठाने के लिये झुका, इतनेमे ही मिसरानी दौड़पड़ीं, "अरे मेरी बीन! " और उसे बिलकुल हृदय से लगा लिया। वह बेचारी तड़फ रही थी–सीने मे पत्थर की चोट का निशान था। और छोटी छोटी आँखों से आँसू बरस रहे थे। मिसरानी भी उसे

छाती से चिपका कर लगातार रो रही थीं। कुछ देर पहिले मिसरजी की कथा सुनाते हुये वह इतनी व्यथित नहीं मालूम देती थीं, किन्तु अब वह आहत थी, घायल थी और लगता था जैसे उनकी प्यारी सन्तान के साथ किसीने बेरहमी की हो। पड़ोस की सारी स्त्रियाँ और बच्चे अपनी अपनी देहलियों से यह सारा काण्ड देख रहे थे। मैंने भी जब चारों तरफ नजर दौड़ाई तो देखा कि शरद—मेरा छोटा भाई सहमता हुआ दरवाजे की ओट से झाँक झाँक कर देख रहा है। जबकि सारे बच्चे निडर और व्यथित होकर घायल कबूतरी पर सहानुभूति की दृष्टि फेंक रहे हैं, तब शरद छुप क्यो रहा है। एक क्षण में मैंने यह सोचा और दूसरे ही क्षण पड़ौस का गोकुल दौड़ता हुआ आया और बोला, "भैया! तुम्हारे शरद ने गुलेल से नीना को मारा है।" मैं तो एकदम जैसे निस्तेज होकर पत्थर की तरह स्थिर रह गया। सामने मिसरानी खड़ी थी—हाथों में कबूतरी नीना तड़फ रही थी। और मैं अपराधी की तरह मिसरानी की उस नीना को देखने लगा।

एक दिन जब सुबह की धीमी धीमी बरसात के बाद छतों पर पीली धूप झलकी, मिसरानी पुलकित होकर नीना को बाहर ले आई। सैकड़ों कबूतरों का झुण्ड आकाश से नीचे उतरा—मैंने देखा किरणमयी आभासे युक्त पैंजनियों पर नीना—वह कबूतरी भी सबके बीच में ठुमक रही है। मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। शरद उसी दिन से बीमार था, मैंने उसे जगाया और कबूतरी का नव-जीवन दिखाया। वह

प्रफुल्लित हो उठा—उसे विश्वास हो गया, अब वह नरक में नहीं जायगा—उसका सारा पाप धुल गया मिसरानी भी उसका अब कुछ नहीं बिगाड़ सकती। उसने झाँक कर देखा—मिसरानी हमेशाकी तरह चबूतरे पर बैठी बैठी हँस रही है। आकर वह अपनी देहली पर खडा होगया मिसरानी ने उसे देखा। वह खुशी में चिल्लाकर पुकारने लगीं, “शरद! आओ बेटे, नीना तुम्हें देखकर नाच रही है” और ज़ोर ज़ोर से हँसने लगी। शरद भी निडर होकर चला गया। नीना-कबूतरी खूब नाच रही थी। मालूम होता था सब कुछ ठीक होगया है। किन्तु थोड़ी देर बाद गुवाड़ी के बड़े दरवाजेसे से १०-१५ आदमियों का झुण्ड अन्दर आया। मिसरजी भी थे। जेल से छूट आने की खुशी में फूले-फूले झपटे से घरकी ओर कदम बढ़ा रहे थे। मिसरानी ने दूर से देखा। उसे लगा मानो दसों दिशाओं में दुन्दुभियाँ बज उठी हैं। एक बार उसने नीचे ठुमकती हुई नीना को देखा और दूसरे क्षण अपने देवता को। मिसरजी और उनके मित्र लहराते हुये आनन्द सागर की तरह किनारे आ लगे। कबूतरों का झुण्ड भुर्र से उड़ गया किन्तु नीना चींचीं करती हुई धरती पर लोट रही थी। शरद चिल्ला उठा, ‘अरे नीना-नीना!’ मिसरजीने घबराकर अपना पाँव उठाया किन्तु मिसरानी की प्यारी नीना जब तक दम तोड़ चुकी थी। शरद रो रहा था और मिसरानी बेहोश थी।

स्वरूपकुमार गांगेय

जीवन का एक चित्र खींचने वाली प्रगतिवादी कहानी

ठेलेवाला

[एक बडासा चौक—जिससे तीन सड़के तीन तरफ जातीं, और चौथी तरफ पूर्व की ओर दो तीन बडी बडी हवेलिया अमीरो की। इनके सामने जरा दायें हटकर एक छोटासा मदिर सीतलामाता का—एक गुमटी-सी। मदिर के दो तरफ पक्का ओटला, पीछे पीपल का झाड और मंदिर के दाहिने—खूब बडा नीम का पेड।]

उस घने नीम के नीचे आठ दस ठेला गाड़िया पड़ी रहती। गाड़ी वाले ओटले पर पर जा बैठते। थोड़े बहुत गाड़ियो पर बैठे हुए साथियो से गप्प छीलते।

इनमें से एक था कुछ छरहरे बदन का, कुछ कालासा। उसके आगे पीछे कोई नही। जो कुछ पैसे मजदूरीसे मिले—रोटियो के लिए कुछ छोड वाकी सब चिलम और भाग पर चढा देता। लोगों से इतना मीठा बोले कि कुछ पूछो नही और कही सनक जाये तो सीधे मुंह बात न करे, रास्ते चलते से उलझ पड़े। मंदिर के चौंतरे पर एक दो निठल्ले साधु वेशधारी व्यक्ति आ ही बैठते और इसकी चिलम का धुँआ नीम के घहरते हुए पत्तों की ओर उठता।

एक दूसरा था बूढा—छोटी पगडी सिर पर रखता, लंबा कोई ६ फीट का। अपनी मजदूरी से मतलब और मिजाज का बड़ा सख्त। किसीकी जी हुजूरी कभी की नही। शाम तक मजदूरी मिली तो ठीक न मिली तो सूर्यास्त हुआ और वह गाड़ी खींच अपने घर की ओर घुमा देता।

ऐसेही कुछ रंग बिरंगे मिजाजों की यह छोटीसी टोली घने नीम नीचे मंदिर के पास धूप छाया और ठंड गरमी मे अपने आप मे मस्त पड़ी रहती—जमी रहती।

एक दिन, गर्मी की मौसम, कुछ लू भी चल रही थी; बार बार नीम घहर घहर उठता। छै सात गाड़िया ओटले की ओर मुंह कर नीम की छाया मे पड़ी थीं। ठेले वाले दो सो रहे थे और वह छरहरे बदन वाला और वह बूढा ओटले पर बैठे कुछ कुछ अपनी धुन में थे—बाकी गाड़ी वालो का पता नहीं।

इतने मे 'ड-रड-रड-रडड' करती हुई एक जूनी जीर्ण ठेलागाडी और इन गाडियों से आ भिड़ी।

बूढ़ा और वह—आवाज से चौंक–पीछे फिरकर देखा एक अजनबी सूरत दुबला बदन—सारे शरीर की हड्डी गिनलो; आखों में लाली, सिर उघाडा, कमर में धोती और बदन पर एक फटीसी बंडी रंग सावला चेहरे पर दीनता। आते ही वह बोला—

“ दादा नाराज होकर क्यों देखते हो; दो पैसे तुम्हारे साथ कमा लूंगा—जस गाऊंगा। ”

“ पर तू है कौन ? ” भंग के तार में झूमते हुए छरहरे बदन वाले ने पूछा।

“ मैं कोई नहीं दादा ? पूरब के एक गांव से आया हूं; एक सेठ की पहिचान से यह गाडी देखते हो न—तीन आने रोज मे भाडे ली है–कल कपडे बाजार में गाडी खडी की थी चार आने मिले थोडा बहुत चना इस गड्ढे मे डाल कर आज फिर उधर गया तो वहा वालों ने मुझे डरा धमका कर भगा दिया। तुम दयालु हो दादा—परदेशी हूँ तुम्हारे आसरे चार पैसे कमा लूंगा ” दीनता दिखाते हुए बोला—

“ पर तुझ भूखे को यही जगह मिली क्या ? ’

वह कुछ न बोल अपनी गाडी पर नीम तले इन लोगो से दया की भीख मागता हुआ बैठ गया।

और वे दो सोने वाले भी जाग पड़े और मंदिर के ओटले पर अपने साथियों के पास जा बैठे। आपस मे वे विचारने लगे कि इस नई बला को कैसे दूर करें। यहां तो खुद को ही पूरे पैसे नही मिलते यह न मालूम कहा से

यहां आ मरा । बूढ़े को यह सब न जंचा वह बोला "पडा रहने दो विचारे को उसके तकदीर की वह खायगा ।" पर औरों को यह बात न जॅची और वे कुढ़ने लगे ।

"अरे ओ गाडी वाले !" एक लाल पगडी वाले ने आवाज दी "दख थोड़ासा सामान यहा से वहां ले जाना है, बोल क्या लेगा । बस एक गाडी की खेप है ।"

छरहरे बदन वाला अपनी चिलम दूसरे के हाथ मे देकर कूदता हुआ बोला ' यही तीन आने देदेना । "

"दो आने में चलता है ।"

"तीन आने देना हो तो गाडी ले लेता हूँ ।"

सेठ ने दूसरो से पूछा पर कोई इससे कम में तैय्यार नहीं हुआ ।

नए आए हुए उस ठेले वाले को कुछ आशा हुई और उसने अपना ठेला कुछ आगे बढ़ाया और बोला "चलो सेठजी ढाई आने देदेना ।"

सेठजी राजी हो उसे ले आगे बढ़े । गाडी चर चररर ड कर चली । यह नीम तले का दल उस नये आए हुए इस ठेले वाले की इस हरकत को देखता रह गया !

"हूँ, इसन अपने पेट पर लात मारदी," एक बोला

" उस गरीब की तकदीर है—दुखियारा है उससे क्या झगड़ा करते हो–" बूढा बोला—

पर उस छरहरे बदन के भंगड ने न आव देखा न ताव जा दौड़ा और उस नए आए ठेले वाले के सिर पर एक धौल लगा कर बोला " क्यो बे गधे, हमने तेरे को यहाँ पर

इस लिये खडा रहने दिया था ” और यो कहता कहता वह उससे जैसे लडने लगा उसके दोनो सोने वाले साथी मदद को दौड आये, एक गरीब दीन के खिलाफ ! गुत्थम गुत्था सी कुछ होने-सी लगी ।

मंदिर के सामने से झगडे की आवाज सुन रंगरेज दौड़ा अमीरों की हवेली मे से एक दो नौकर, दो चार राहगीर इकट्ठे होगये, बीच बचाव किया गया ।

नया गाडीवाला अपनी गाडी लिये दूसरे ठिकाने की तलाश में आगे बढगया ।

सेठजी ने इन मगरुर गाडीवालो मे से एक को साथ ले अपना सामान तीन आने मे पटकवाया ।

नीमतले बाकी बच ठेलेवालो ने इस नई बला को यो सरलतया टल जाने से एक एक कस जोर से चिलम का खीचा ।

नीम के थहरते हुए पत्तों की ओर धुवाँ उठने लगा ।

माणिकचंद पांड्या

कला के मर्म की चित्ताकर्षक कहानी—

शिल्पी की चुनौती

बात कई सौ वर्ष पुरानी है। उस समय वारंगल के राजा थे सुरेन्द्रराजदेव द्वितीय। राजा न्यायप्रिय थे। प्रजा उनसे प्रसन्न थी और देश उनके कुशल शासन और समय की कृपा से समृद्ध और सुसपन्न था। वारंगल उस समय बाद को होने वाले छोटे-छोटे झगड़ो और पडोसियो के युद्ध-प्रयासों से बचा हुआ था। धर्म और ब्राह्मणो की रक्षा और दान-पुण्य के कारण सारे दक्षिण मे राजा की ख्याति थी।

सुरेन्द्रराजदेव की सभा में कुशल नीतिज्ञ, पंडित, कवि और कलाकार थे। कलाकारों में प्रमुख था शिल्पी जीवनदत्त। राजा उससे प्रसन्न थे, दरबार में उसका मान था और सब लोग उसकी कला-कुशलता पर मुग्ध थे। वारंगल को अपने शिल्पी पर गर्व था।

एक दिन, सुबह के समय, सुरेन्द्रराजदेव नगर से बाहर वायुसेवन के लिये गये। साथ में जीवनदत्त भी था। एक बड़े मैदान के सामने राजा रुक गए और जीवनदत्त से बोले, "शिल्पि श्रेष्ठ! बड़ी कामना है कि इस स्थान पर एक विशाल राज-भवन हो जिसकी तुलना भारत के सर्व श्रेष्ठ राज-मंदिरों से हो सके।

जीवनदत्त का मुख प्रसन्नता से चमक उठा। सविनय मस्तक नवा बोला।

"महाराज! सेवा में प्रस्तुत हूँ। आपकी आज्ञा मात्र चाहिये। भवन की पूरी आकृति मेरे मस्तिष्क में वर्षों से है।"

राजा ने विश्वास के साथ कहा, "मैं जानता हूं यह कार्य तुम्हारे अतिरिक्त कोई पूरा नहीं कर सकता। कार्य प्रारम्भ करो, जीवनदत्त, और चाहे कितना भी धन व्यय हो इसकी चिन्ता न करना। केवल स्मरण रहे कि राज-मंदिर संसार में अनुपम हो।"

दूर-दूर से भाँति भाँति के पत्थर मँगवाये गये। शुभ मुहूर्त में निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ।

जीवनदत्त ने राजा को सूचित किया कि निर्माण में

लगभग १४ वर्ष लगेंगे। राजा ने सोचा १४ वर्ष ! पर दूसरे ही क्षण याद आया संसार का सर्वश्रेष्ठ राज-भवन। और उन्होंने १४ वर्ष के लिये धैर्य रखने का निश्चय किया।

एक-एक करके ७ वर्ष बीत गये। राज-भवन लग-भग आधा बन चुका। पर इसी बीच वारगल नरेश का खजाना खाली हो गया। राज-भवन तो पूर्ण करना ही होगा। अतएव प्रजा पर नए-नए कर लगाने पडे, किसानो से उपज का अधिकांश ले लेना पडा।

दिन बीतने लगे। प्रजा नये करो के भार के नीचे दबने लगी। किसान दारिद्रय से पीडित हो उठे। और एक दिन जब वे अधिक न सह सके, तब राजा के सामने उपस्थित हुये।

राजा सुरेन्द्रराजदेव ने उनकी फरियाद सुनी। अपनी प्रजा की पीडा से उनका जी भी पीडित हो उठा। उन्होंने जीवनदत्त को बुलाया।

जीवनदत्त राजदरबार मे उपस्थित हुआ। राजा के चरणों में मस्तक नत कर अभिवादन किया और बोला, "देव ! दस वर्ष बीत चुके है। अभी चार वर्ष और बाकी है। जो कुछ बन चुका है वह आप स्वयं देखे। वह अनुपम है राजन् !"

राजा ने चिंतित हो कहा, "जीवनदत्त ! पर मै अपनी प्रजा को क्या उत्तर दूँ ?"

जीवनदत्त एक क्षण मौन रहा। फिर कुशल वक्ता के

समान सधे हुये स्वर में उसने फरयादी किसानों को संबोधन किया। उन्हें समझाया कि केवल चार वर्ष धैर्य रखें। इस बीच जो भवन तय्यार होगा वह वस्तु-निर्माण कला का सारे विश्व में एकमात्र अनुपम उदाहरण होगा। उस समय क्या वारंगल के निवासियों का मस्तक गौरव और गर्व से ऊंचा न हो उठेगा? क्या गौरव और यश के मार्ग कष्ट और व्यथा से पूर्ण नहीं है? आदि अनेक प्रकार से उसने प्रजा को समझाया। कुछ समय के लिए सतुष्ट होकर, सब लोग चले गये।

पर राजा जानते थे कि केवल मधुर शब्दों से प्रजा संतुष्ट नहीं हो सकती। अतएव, कुछ महीनों बाद, कारण-वश राजा सुरेन्द्रराजदेव को अपने पड़ोस के राज्य पद पर आक्रमण करना पड़ा। युद्ध में वारंगल की विजय हुई और असंख्य धन-राशि के साथ जयी वारंगल-नरेश ने, अपनी राजधानी में प्रवेश किया।

इसी बीच १४ वर्ष बीत गए। निर्माण-कार्य, पूर्ण हुआ।

राजा ने जीवनदत्त के साथ चारों ओर से महल देखा।

महल की दीवारें नाना प्रकार के बेल-बूटों की बारीकियों से आच्छादित थीं। एक दीवार पर महाभारत की पूरी कथा शिल्प-चित्र में अंकित थी। एक ओर रामायण की कथा थी। सीता की अग्नि-परीक्षा का दृश्य एक पूरी-दीवार लिये हुये थी। स्थान-स्थान पर नाना प्रकार के आभूषणों से लदी हुई सुन्दरियों की आकृति खुदी हुई थी। एक ओर कक्ष में

वारंगल के नृपतियों का पूरा इतिहास था, सबकी मूर्तियाँ थीं। दरबार-भवन मे इन्द्रादि देव चँवर डुला रहे थे। उनके मुख पर उल्लास के चिन्ह स्पष्ट थे। उनके चँवर मे जड़े एक-एक रत्न को गिना जा सकता था। एक स्तम्भ में एक छोटे से कमल पर भ्रमर मँडरा रहा था। भ्रमर का एक-एक पंख तक स्पष्ट था। एक बहुत ही छोटे से पत्थर पर हाथी बना हुआ था। और राजा ने आश्चर्य के साथ देखा कि लघुद्राक्ष फल से भी छोटे पत्थर पर खुदे हुये उस हाथी की पूँछ का एक-एक केश गिना जा सकता था।

कटाई का इतना सजीव बारीक काम देख कर राजा मुग्ध हो गये। मंत्रियों एवं सभासदो ने एक मत हो स्वीकार किया कि राज-भवन निःसंदेह विश्व का सब से कलापूर्ण सृजन है।

पर बाहर आकर राजा ने देखा कि मुख्य द्वार-स्तम्भ का प्रमुख अंश सूना है। उसे शिल्पी ने स्पर्श भी नही किया है। सब विस्मित हुये। जिस शिल्पी ने इतनी बारीक शिल्पकला का दर्शन कराया वह प्रमुख स्तम्भ के सामने के अंश को कैसे भूल गया?

जीवनदत्त ने राजा का विस्मय देखा। धीमे से मुस्कराया और बोला, "यह शिल्पी की भूल नही है राजन्! यह सारे विश्व के कलाकारों को शिल्पी की चुनौती है!"

सबने जिज्ञासा-सूचक दृष्टि जीवनदत्त की ओर डाली।

जीवनदत्त ने एक क्षण रुक कर सगर्व स्वर मे कहा,

"देव ! संसार में यदि कोई भी इस से श्रेष्ठ शिल्प-निर्माण कर सके तो यह स्थान उसके लिये खाली है। वह आकर इसे पूर्ण करे। यही सूना स्तम्भ इस मन्दिर की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध कर सकेगा।

मुग्ध से सब ने एक स्वर में शिल्पी की प्रशंसा की।

राजा ने प्रसन्न हो शिल्पी-श्रेष्ठ जीवनदत्त को अपने निजी खजाने की आधी संपत्ति समर्पित की।

जीवनदत्त ने कहा, "महाराज ! संसार में कोई नहीं जो मेरे १४ वर्ष के परिश्रम और मेरी कला का मोल कर सके। फिर भी आपकी सद्भावना से प्रेरित हो स्वीकार करता हूं।

दिन बीतने लगे। सारे भारत में वारंगल नरेश के नये भवन की ख्याति फैल गई। देश-देश से बड़े-बड़े शिल्पी आये और पूरा भवन देख कर सूने स्तम्भ को पूर्ण कर सकने की अक्षमता को स्वीकार करके चले गये। किसी का साहस नहीं हुआ कि चुनौती स्वीकार करे।

और एक दिन एक दरिद्र-सा शिल्पी आया। उसके हाथ में एक छेनी और एक हथौड़ा था। लोग उसे देख कर हँस पड़े। लड़के उसे पागल समझ कर चिढ़ाने लगे। पर उसने किसी बात की चिंता नहीं की। पूरा भवन उसने अच्छी तरह से देखा। और फिर उस चुनौती वाले स्तम्भ के सहारे जाकर बैठ गया।

सूर्य अस्त हो गया। वह उठा, राज-पथ के दीप के

मंद प्रकाश मे वह पत्थर पर खुदाई करने लगा। रात भर वारंगल की सूनी गलियों मे उसकी हथौडी और टाँकी का स्वर गूजता रहा।

और सुबह के मंद प्रकाश मे, सूर्योदय के पूर्व ही वह जिस प्रकार आया था, उसी प्रकार चला गया।

सुबह हुई। सारे राज्य मे सनसनी फैल गई। झुण्ड के झुण्ड लोग शिल्पी की चुनौती के उत्तर को देखने के लिये फिर आये।

सबने स्तम्भ को देखा और एक मत हो स्वीकार किया कि अपूर्ण, सूना स्तम्भ इस पूर्ण किये गये स्तम्भ से कही अच्छा था। सबने विश्वास के साथ कहा कि अवश्य ही वह दरिद्र शिल्पी कोई दुष्ट युवक था जिसने इस प्रकार प्रमुख स्तम्भ को बिगाड़ कर सारे राज-भवन की शोभा नष्ट कर दी। सम्पूर्ण वारगल क्रोध मे तमतमा रहा था।

सुरेन्द्रराजदेव ने आकर स्तम्भ देखा। उनकी भ्रकुटि सिकुड गई और सरोष स्वर मे उन्होने उस युवक को बदी बना लाने की आज्ञा दी।

राज-सैनिक चारों ओर निकल पड़े।

जीवनदत्त को भी समाचार मिला। धीरे-धीरे वह भी राज-मन्दिर की ओर चल पड़ा। अपनी चुनौती वाले स्तम्भ के सामने वह जा खड़ा हुआ। और नवीन शिल्पी के कार्य को ध्यान से देखा। उसने देखा कि छः प्राणियों का एक वृत्त बना हुआ है। एक सर्प है जिसे खाने को प्रस्तुत है

मयूर, मयूर को शिकार बनाने के लिये उत्सुक एक बिलाव है, बिलाव को एक श्वान खाना चाहता है, श्वान के पीछे है चीता जो कि उसके ऊपर हमला किया चाहता है, चीते के पीछे मनुष्य शिकारी, धनुषबाण लिये प्रहार करने को प्रस्तुत है, और मनुष्य को काटने को प्रस्तुत है वही साँप। एक दूसरे के प्राणों के उत्सुक छ. ही प्राणी एक वृत्त मे बंधे हुये है।

जीवनदत्त ने देखा कि चित्र मे कही भी कला नही, कोई बारीकी का काम नहीं। चीते के एक पैर का पता नही, तो मयूर के सर पर उसका स्वाभाविक मुकुट नही।

पर फिर भी वह अपलक नेत्रो से उस विचित्र शिल्प-चित्र को देखता रहा।

आस पास के लोगों ने आश्वासन भरे स्वर मे कहा, "शिल्प-श्रेष्ठ! महाराज ने उस शिल्पी को बंदी-करने की आज्ञा दी है। सैनिक उसके लिये प्रस्थान कर चुके है।

पर सब ने बडे विस्मय के साथ देखा कि शिल्प-श्रेष्ठ का गर्वोन्नत मस्तक धीरे-धीरे झुक रहा है। वे घुटनों के बल भूमि पर झुक गये है। और एक क्षण बाद, उन्होने अपना मुख दोनों हाथो मे छिपा लिया है, मानों किसी गहरी पराजय की लज्जा से गडे जा रहे हो।

राजा के सैनिक उस दुष्ट शिल्पी को वन्दी करने के लिये चारों ओर निकल पड़े थे। और क्रुद्ध प्रजा जीवनदत्त की पीडा देख कर प्रतिशोध के लिये व्याकुल हुंकार भर रही थी।

—विरेन्द्रकुमारजी सेठी

इंस्पेक्टर

फलेक्स शूज को चाटती हुई धोती पर अचकन पहिने और तीन अंगुल के कपाल पर चार इन्च दीवार की टोपी लगाये, ढाई मन के वजनदार मानवी ढाँचे मे नौकरशाही के सारे अभिमान को बटोकर जब उसने आफिस में पैर रक्खा तो चपरासियोंने चौकन्ने होकर एक लम्बा सा सलाम किया। अभिमान के एक मीठे धक्के से उसका सिर ऊपर से नीचे की ओर हुआ।

देखते-देखते वह मेरी कुर्सी के पास आगया। मेरी गुलामी ने मुझे आपही आप कुर्सी से खड़ा कर दिया। मेरी अन्तरात्मा मुझ से घृणा करने लगी, किन्तु एक नाटकी हँसी के साथ उसके लम्बे किये हुये हाथ पर मेरा हाथ जा लगा।

'आज-कल तुम्हे शायद फुर्सत नहीं मिलती' कहते हुये वह आगे बढ़ गया। बड़े बाबू और उसमे मौसमी बात चीत होने लगी।

पहले प्रयास में बैलेन्स-बुक मिला लेने का मुझे अभ्यास सा होगया है किन्तु ' आठ और दो दस और छः सत्रह ' करने लगा। पाँचवीं बार भी छः पाई की गलती रह ही गई। कुछ परेशानी बढ़ी। आत्म-ग्लानि भी बढ़ने लगी। सुना है जर-खरीद गुलामों से भावुकता दूर रहा करती है किन्तु आज मेरा हृदय ओठो पर आने के लिये उतावला हो रहा था। हृदय की धडकन कहने लगी, " आज-कल तुम्हें शायद फुर्सत नहीं मिलती "। सोचने लगा, उसने ऐसा क्यो कहा ? समझा मैं उसके स्वागत के लिये स्टेशन पर नही गया था। किन्तु मैं चपरासी तो नहीं हूँ। मेरी ड्यूटी-लिस्ट में इसका उल्लेख भी नहीं है। आफिस के बाहर इसका मेरा सम्बन्ध भी कौनसा है।

महिने भर अपने मानव को मशीन बनाने के बाद मुझे तनख्वाह मिलती है, किन्तु मेरा हृदय मुझे आफिस के बाहर मशीन नहीं बनने देना चाहता। मेरा कोई अपराध नहीं है। कानून भी मुझे अपराधी करार नहीं दे सकता। फिर यह परेशानी कैसी ? इसकी तह में अनिष्ट की आशंका क्यों है ?

" बेलेन्स मिल गया क्यो ? बड़े बाबू ने पूछा "।

" अजी अभी कुछ सोच रहे हैं। अभी उन्हे फुर्सत ही नहीं है " ? इन्स्पेक्टर ने अभिमान और व्यंग के मिश्रण का एक कश खींचते हुये, धीरे से चुटकी ली। इस इशारे ने अंगारे की राख झाड़ दी।

“ हाँ तो स्टेशन आना .   ”

हृदय मे एक धड़सा धक्का लगा। आगे के शब्द तो मुँह से नहीं निकले पर भाव वाणी बनकर आँखो मे अपनी ताकत दिखा गये। मै उसके सामने सिगारेट नही पी सकता था, किन्तु आज मैने सिगारेट सुलगा ही ली। बड़े बाबू की आँखोंने कहा, यह क्या कर रहे हो? इन्स्पेक्टर की आँखोने समझ लेने की धमकी दी और मेरी आँखे सिगारेट के धुये मे स्वाभिमान की मजिल खोजने लगी। तरुणाई के तकाजे ने उठते हुये धुये मे कई छाया-चित्र बनाये। ऊपर टगे हुए कलेन्डर पर पहली तारीख इतनी बड़ी दिखाई देने लगी मानो वह संसार के सारे नौकरों का स्वाभिमान एक आने के टिकिट पर दस्तखत करवाकर छीन सकती है। माचिस रखने के लिये जेब मे जैसे ही हाथ डाला तो मनीबेग मे उंगलियाँ चिपक सी गयीं। उसमे पड़े हुये गोल सिक्कों के क्षेत्र फल से सम्पूर्ण विश्व का क्षेत्रफल कम मालूम होने लगा। बेचारे मानव-हृदय के आँसुओ की कीमत ही क्या है। मनुष्य रोटियों की रिश्वत खाकर आँसुओं को पीजाने की क्षमता रखता है। कलेन्डर पर टँगी हुई आँखे नीचे उतरीं और मैं फिर काम करने लग गया। टाईप-राइटर की खट-खट मे हृदय की धडकन धीरे-धीरे गुमराह होने लगी।

—रामचन्द्र शर्मा नवजात

जीवनका अर्थ

“ महाराज ! ”

“ कौन है ? ” शिवाजीने मुडकर देखा, किन्तु कोई भी दिखायी न दिया। घोडा फिर बढ चला।

“ महाराज ! ”

अबकी बार आवाज कुछ अधिक तीव्र और करुण थी ! घोडा रुक गया। शिवाजीने ध्यान से देखा रात्रि के घने अंधकार में एक प्रतिमा हिल रही थी। वह फिर बोली—

“ महाराज ! ”

“ कौन ? ” प्रतिमा पास आगयी थी। तारागणों के झिलमिल प्रकाश में शिवाजी ने देखा—वह एक युवती थी। ‘ दुहाई ! महाराज अबला की रक्षा: ! ’ वह काँप रही थी।

'न डरो सुन्दरि ! न डरो ! कहो वह कौनसी विपत्ति है ? किसने तुम्हे सताया है ? बताओ, उसे दूर करना शिवाजी का कर्तव्य है। ' और वे चारों ओर देखने लगे, मानो अपराधी को खोज रहे हों !

" नहीं देव ! मैं अकेली, निःसहाय. ! "

" नही नहीं ! शिवाजी तुम्हारा सहायक है। वह हर तरह से तुम्हारी रक्षा करेगा ! "

" देव ! "

" कहो कहो ! न डरो ! यह मेरी प्रतिज्ञा है। शिवाजी दम तोड़कर भी प्रतिज्ञा तोड़ना नहीं जानता ! "

" तो अपनालो देव ! मुझे अपनी दासी बनालो—मै इन पवित्र चरणों की सेवा मे ही अपने इस जीवन का अंत कर दूँ ! "

" सुंदरि ! " शिवाजी सिहर उठे ! उनका मुँह उतर गया। रमणी पृथ्वी पर दृष्टि गाड़े थी।

एक क्षण सन्नाटा रहा। शिवाजी फिर बोले—'सुंदरि !'

" महाराज ! "

" जानती हो मेरा क्या कर्तव्य है ? जन्मभूमि के उद्धार और गौ-ब्राह्मणों की रक्षा का सारा भार मेरे सिरपर है ! "

" किन्तु मेरे होने से आपके कर्तव्य पथ मे कौन से रोड़े अटकेंगे देव ! "

" तो यह समय क्या मेरे लिये विलासमय जीवन बिताने का है ?—क्या ललनाओं के प्रेमपाश में बँधने

का है ! ”

“ तो देव ! विवाह का अर्थ क्या विलास ही है ? महाराज ! विश्वास रखिये—मुझे भी इस महायज्ञ में थोड़ा-सा हिस्सा दीजिये । ”

“ असंभव ! यह सर्वथा असभव है ! शिवाजी जानते हुए भी अपने को इस जाल में नहीं फँसा सकता !

“ किन्तु महाराज ! क्या प्रतिज्ञा भंग होगी ? ”

“ ओह ! सुंदरि तुमने भयंकर विश्वासघात किया है ! ” शिवाजी हतसंज्ञ से हो गये । उनके नेत्रो में अँधेरी छा गयी और हृदय में एक भयंकर द्वन्द मच गया । वे कुछ भी निश्चय न कर सके ।

रमणी काँप उठी । उसके हृदय में आशा और निराशा की लहरें एक दूसरे से जोर से टकराने लगी । रात्रि की वह एकात शाति एकदम भयंकर हो उठी । वह अपने सारे शरीर की शक्ति एकत्रित कर एक बार फिर काँपते हुए स्वर में बोली—“ जो आपके जीवन का अर्थ होगा देव ! ”

“ मेरे जीवन का अर्थ तो है बलिदान ! ” कहते हुए शिवाजीने घोडे को एड लगादी । दूसरे ही क्षण घोडा हवा से बातें करने लगा । रमणी ममोहत होकर चिल्ला उठी—‘ महाराज ! ’ ‘ कुछ काल प्रतीक्षा करो ! ’ मानो हवा न लौटकर कहा । शिवाजी आँखों से ओझल हो गये और रमणी वहीं पाषाणवत् खड़ी रह गयी ।

+ \+ \+

प्रातःकाल की मधुर बेला थी । प्राची के निरभ्र आकाश में अरुण घनों ने भगवान् भुवनभास्कर के शुभागमन की सूचना दी और पक्षी मंगलगान गा उठे । इसी समय तोरण के दुर्ग मे प्रहरी ने शिवाजी के नीचे पधारने की सूचना दी और वन्दीजनो के मुख से उल्लासमय गीत फूट पड़े । यत्रतत्र वितरित युवक शांतिपूर्वक एकत्रित होने लगे—अपने को धरा और धर्मपर उत्सर्ग करने के हेतु अवसर मिलने की आशा मे । आज शिवाजी कुछ सैनिक चुनेंगे ।

सवारी आयी और जय घोष से आकाश गूँज उठा । तेजोमय उन्नत मस्तकवाले युवक विनय से एक कतार मे खड़े हो गये । शिवाजीने पहले एक-एक को ध्यानपूर्वक देखा । फिर बोले—‘ वीरो, अब मैं क्या चुनूँ ? क्या तुम सब हँसते-हँसते अपनी बलि देने के लिये तैयार हो ? ’

“ तैयार है ! हम मरेंगे । इस मातृभूमि के लिये बलि होंगे ? ”—सब एक स्वर से बोल उठे ?

“ देखो ? सब को अपने सिर देना होगे ? ”

“ हर्ष से देव ? आज्ञा हो ! ” उल्लास की एक लहर दौड़ गयी ‘ प्रमाण ! ’

“ आज्ञा देकर देख ले देव ! ”

“ मुझे अभी चाहिये ! यही ”

एक बार सन्नाटा छा गया । सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे—‘ क्या प्रमाण दिया जा सकता है ! ’

दूसरे ही क्षण फिर शिवाजी ने कहा ‘ जल्दी हो ! ’

'लीजिये देव ! कहकर एक युवक आगे बढ़ गया। उसके बाये हाथ से रक्त की धारा छूट रही थी। उसने विनयावत होकर शिवाजी के हाथ मे एक कटी हुई अँगुली देते हुए कहा:—

'यह लीजिये देव ! यह मेरा प्रमाण है !'

'शाबास !' शिवाजी के मुख से हठात् निकल पडा। वे गम्भीर भाव से युवक की ओर देखने लगे। वह इकहरा बदन, उन्नत वक्ष तथा ओजस्वी अरुण मुख-मडल उनके हृदय में बैठ गया। उन्होंने पुलकित होकर कहा—'तुम इस टुकडी के नायक बनाये गये। युवक ! तुम्हारा नाम ?'

'सेवक है देव !'

'इस आक्रमण मे तुम्हीं मेरे साथी होगे'—फिर टुकड़ी की ओर देख कर बोले—'मुझे विश्वास है वीरो ! प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं। मैं जो चाहता था वह मुझे मिल गया। ये तुम्हारे नायक हैं—इनका अभिनदन करो !'

युवक ने टुकडी की ओर देखा—सैनिकों के सिर अपने आप नीचे झुक गये। उन्होंने हृदय से अभिनन्दन किया। फिर शिवाजीने आज्ञा दी—जाओ वीर, तैयारी करो !' हमे शीघ्र ही प्रयाण करना होगा !' और जयघोष के साथ उन्होंने महल में प्रवेश किया।

'जय भवानी !' 'काटो !' 'मारो !' 'छपाक !' 'दन !' 'तोड दो !' 'फोड़ दो'—रणागण घनघोर

ध्वनियों से गूंज रहा था। शिवाजी के वीर अदम्य उत्साह से लड रहे थे। यवन सेना भ्रमर में पड़े पोत की भाँति प्रतिपल डगमगा रही थी। शिवाजी की ओर से एक धक्का लगा और यवनों के पैर उखड गये किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने फिर से अंतिम और प्रबल आक्रमण कर दिया। इस समय उनका साहस सराहनीय था।

शिवाजी यवनों में घुस गये। रक्षार्थ सेवक उनके साथ था। इन्होंने खलबली मचा दी—भीषण नरसंहार का वह एक हृदय-द्रावक दृश्य था। धरातल रक्त से परिप्लावित हो गया। सहसा एक यवन ने शिवाजी पर वार किया किन्तु सेवकने कल्पनातीत चातुर्य से उसे निःशस्त्र कर दिया। पर दूसरे ही क्षण एक अन्य सैनिक के वार के साथ ही—साथ उसकी दाहिनी भुजा भूमिपर लोटने लगी। वह भी निःशस्त्र हो गया। एक क्षण भी न बीती होगी कि शिवाजी पर फिर यवन सेनापतिने वार किया। शिवाजी सम्हल न सके। सेनापति का अमोघ वार शिवाजी की पीठ पर गिरने ही वाला था कि युवक बीच में आगया। उसने वार अपने ऊपर झेल लिया। उसी क्षण शिवाजी के एक ही हाथ में यवन का मस्तक भूमिपर लौटने लगा।

प्रांगण में गगन-भेदी घोष हुआ 'जय भवानी!' 'वीर शिवाजीकी जय!' और बचे-खुचे यवन सैनिक भागते हुए दिखायी दिये।

शिवाजी गद्-गद् हो गये किन्तु उसी क्षण उनकी दृष्टि

भूमिपर तडफते सेवकपर पड़ी। शिवाजी बच्चों जैसे रो पडे-‘सेवक–वीर ! व—!’ वे घोडे से कूद पड़े–‘आह रे भाग्य !

‘विजय हुई देव ! यह आनन्द का समय है।’

‘सेवक ! तुम्हें खोकर !!’ उन्होंने उसे गले लगा लिया।

‘क्षमा हो देव ! यदि सेवक से कोई भूल हुई हो तो अंतिम–बार !’

‘किन्तु सेवक ! तुम तो अभी भी अपरिचितसे—

‘चरण रज दीजिये देव ! मैं वही प्रतीक्षिका हूँ—विगत रात्रि के प्रथम प्रहर मे महाराज ने प्रतिज्ञा की थी।’

‘कौन ? ओह !—सुन्दरी ? क्या वही !! बहुत जल्दी की किन्तु तुमने ! क्या शिवाजी के शब्दोपर विश्वास न था ?’

‘यही तो मेरे जीवन का अर्थ–था–देव !’ उसने शिवाजी के चरण छूते हुए कहा। कुछ क्षण बाद सैनिकोने देखा—शिवाजी सेवक के मृत शरीर पर सिर रखे फूट-फूट कर रो रहे थे; किन्तु उसके शुष्क ओठो पर हास्य की एक रेख थी।

—भालचन्द्र जोशी
बी. ए, साहित्य रत्न.

जीवन-जाग्रति-साधना-समन्वित बलिदान और
भारत के अतीत गौरव की अमर कहानी

कुमार

आप हँसते क्यों हैं ?

" क्यों नहीं हँसू ? अभी तो आप कह रहीं थी—" आप क्या सोच रहे हैं " और अब कहती है—" क्यों हँसते हैं ? यह भी खूब ! मैं तो तंग आ गया आपसे, बाबा ! लो मैं तो चला, यहाँ तो रहना ही कठिन है । " कुमार ने हँसते हुए उत्तर दिया ।

लेकिन बिना किसी विचार के न हँसा ही जा सकता है और न सोचा ही जा सकता है, आप टालते क्यों हैं ? न बताना हो मैं विवश नहीं करती ।

अच्छा नही मानती हो, तो सुनो—

बचपन की बात है, दादी कहानी कह रहीं थीं, मै और बहन सुन रहे थे—

एक था राजकुमार–उसे शिकार खेलने का बड़ा शौक था। एक दिन वह अपने साथियो के साथ शिकार खेलने गया, साथी पीछे रह गये। वह आगे बढता गया। घोडा दौड़ते-दौडते थक गया। शिकार हाथ न आया। हिरन एक झाडी में जा छिपा। चारों ओर घना जंगल था। भूख प्यास से व्याकुल राजकुमार एक झरने के निकट पहुँचा। एक राजकुमारी पैर से झरने का बहता हुआ जल उछाल रही थी। उसके हाथ में कमल-पुष्प थे। राजकुमार ने पहले पानी पिया फिर घोडे को पिलाकर आगे बढ़ा। राजकन्या राजकुमार के रूप को देखकर मोहित हो गई।

दादी की यह कहानी मेरे जीवन की भविष्यवाणी है।

"कुमार आप बड़े चतुर है।"

"नहीं, यह आपका भ्रम है, मैं झूठ कभी नहीं बोलता।"

'लेकिन मेरा यह अर्थ कदापि नहीं है"

"मैं कब कहता हूँ कि आप विश्वास नहीं करतीं—जीवन एक कहानी ही है, जिसके प्रत्येक पात्र अधूरे है। जन्म और मृत्यु इसके आदि अन्त हैं। लेकिन इस आदि और अन्त में भी कहानी पूरी नहीं होती।"

"हम दोनों मे से कौन किसको जानता था, आज ऐसा ज्ञात होता है मानों वर्षों पुरानी पहचान है।"

" आपके साथी तो अभी तक नही आये ? "

" और आपकी सखियाँ ? "

" मुझे कुछ अधिक दूर जाना न पड़ेगा, आपतो भूले हुए शिकारी हैं । "

" क्या आपका घर मेरा नही हो सकता ? "

× × ×

" आपने क्या कहा था, कुमार ! जब यह आपका ही घर है तो जाने की इतनी जल्दी क्यो ? "

" पिताजी व्यग्र होगे और माँ ने तो अन्न-जल भी ग्रहण नहीं किया होगी । आज तीन दिन आपका आतिथ्य स्वीकार किये हो गये । "

" हमने सूचना भेजदी थी । यह देखो महाराज का पत्र आया है । "

" आप मेरी ओर क्या देखते है, पत्र लीजिये न ! "

" आप बड़ी चतुर है, मुझे बताया भी नहीं और सब अपने आप ही कर डाला । "

" अभी आप तीन दिन और नही जा सकते, पिताजी का आदेश है । " और वह शीघ्रता से चली गई ।

× × ×

कुमार ने नौका को दक्षिण की ओर घुमाते हुए कहा—सविता ! और वह फिर सोचने लगा । सविता ने एक बार उनके मुख की ओर देखा और फिर सरोवर में उठती हुई लहरियो को देखने लगी ।

" जीवन की यह अन्तिम स्मृति है। जाने फिर मिलन हो, न हो। क्या तुम मेरे प्रस्ताव का उत्तर न दोगी सविता ?"

आरक्त कपोलों पर गम्भीरता छा गई, दृढ़ स्वर में कहा—कुमार ! जीवन एक परीक्षा है।

यहाँ तुम्हारी भावुकता नही टिक सकती। रूढ़ियों की क्रूर थपेड़ें जब लगेंगी, कठोर सत्य जब सामने आयेगा, उसी समय हमारी परख होगी।

पहले यह सोचो तुम कौन हो, और कौन है हम। देश आज पराधीन है। मातृ-भूमि पद-दलित है। माँ आज तुम्हारी ओर करुण नेत्रों से देख रही है। तुम्हारे जैसे लालो से उसे आशा है और तुम आज विलास को अपनाने जा रहे हो। यह क्यों नहीं कहते कि पहले मुझे देश स्वाधीन करना है और पीछे अन्य कार्य। क्या तुम्हारे शरीर मे पूर्वजों का रक्त नही है ? क्या तुम बप्पारावल की संतान नहीं हो ? धिक्कार है तुम्हारी इस कायरता पर; और धिक्कार है इस विवाह प्रस्ताव पर।

सविता ! बीच में टोकते हुए कुमार ने कहा—" बहुत सुन चुका अब अधिक नहीं सुन सकता, मेरे हृदय की ज्वाला न भडकाओ जानती हो, मैं कौन हूँ ? "

" कौन हो कुमार ? " सविता ने पूछा।

" मार्ग-हीन निर्जन बन में भटकता हुआ एक यात्री। तुम्हीं बताओ क्या करूं ? इस विदेशी सत्ता के आगे, जब सारे देश ने ही सर टेक दिया तो मैं अकेला क्या करूं ? आज सारे देश पर विदेशी पताका फहरा रही है। देश की

बागडोर जिसके हाथ मे है वे आज राज दरबार में सम्मान के लिये नाक रगड़ते है । तो मैं क्या कर सकता हू ? सविता !”

“सफलता मिल जाना ही जीवन का लक्ष नही है । कुमार, हमे तो प्रयास करना है । क्या तुम इस तुच्छ जीवन को कठोर साधना की वेदी पर नही चढ़ा सकते हो ?”

“कुमार साधना के कठोर मार्ग पर चलने मे किसी से भी पीछे नही रह सकता सविता !”

“तो, लो कुमार !”

“ऐ, यह क्या किया !”

“क्या किया, वही तो न ।”

“देखो कुमार, आज एक बहिन के रक्त से तुम्हारा मस्तक सुशोभित है; इस तिलक की रक्षा तुम्हारे हाथ मे है ।”

“लेकिन अब तो रक्त पोंछो । कितना रक्त बह रहा है ।”

रक्त ! रक्त जब बहा सकते हो तो क्या बहना नही देख सकते ? इसकी क्या चिन्ता, हमे जाने कितनी बार रक्त-दान देना पड़े ।” हँसती हुई सविता कुमार की ओर देखने लगी ।

“तुम बडी पागल हो”—कुमारने दुलार-भरे शब्दोंमे कहा ।

× × ×

वीर राजपूतों की तलवार एक बार फिर चमक उठी । सदियों से सोया हुआ आत्माभिमानी राजस्थान फिर दहाड उठा । उसकी हुंकार से मुगल शासक थर्रा उठे ।

जिनको जीने के लिये मरना आता है वे काल

स भी नहीं डर सकते फिर शत्रु से क्यों डरने लगे। पीछे वे क्यों हटें, वे तो स्वाधीनता की प्रतिज्ञा लेकर आये हैं। आज उनका जीवन अपना नहीं है। वे देश के लिये हैं। आज ऐसे ही नरेश अपने सैन्य-दल के साथ मुगलों से लोहा ले रहे हैं। आज उनका न किसी से द्वेष है न वैमनस्य। राजपुत्र तो केवल स्वतंत्र होकर जीना चाहते हैं। किन्तु अभी हमें कुछ और देखना शेष था। प्रयत्न में फिर क्यों सफल होने लगे? माँ! बन्दिनी माँ के बन्धन फिर कैसे शिथिल होते।

युद्ध की भीषणता के साथ दिन अस्त हो चुका है। मुगल सेना विजय पताका उडाती हुई चली गई है। आप जानते हैं, वह कौन है जो उसने ढूँढ ही लिया—

"पानी?"

"हाँ, लो पियो, जीभर पीलो।"

"यह क्या तुम तो रो रही हो?"

"नहीं कुमार, मैं! छिः; मैं क्यों रोने लगी, मैं रोऊँगी?" और सविता ने आँसू पोंछ डाले।

"अच्छा बहन जाऊँ न?"

"कठोर-साधना! जाओ भइया तुम्हारी साधना अमर है। असफलता से हमें कभी निराश नहीं होना है।"

रात के गहरे सन्नाटे में भी सर्राती हुई वायु कहती है—

"असफलता में ही सफलता का मन्त्र है।"

—नारायण प्रसादजी शुक्ल, विशारद

हमारे युग की वेदना को प्रकट करने वाली यथार्थ वादी कहानी

इक्केवाला

रात्रि के दस बजे थे। चारों ओर सन्नाटा छाया था। सडकों पर जव कभी इक्के दुक्के ताँगा या इक्का की खड़खड़ाहट सुनाई पड जाती थी। आकाश मे तारागण पृथ्वी के प्राणियो के कृत्यो को देख-देखकर खिल खिलाकर हँस रहे थे। रहीम भी कमला नेहरू रोड पर अपना इक्का सरपट दौडाए लिए जाता था।

× + ×

सुरेश इक्के पर से उतर पड़ा और उसने इक्के वाले के हाथ पर दो पैसे रख दिए। एक मील की लम्बी यात्रा ने उसके लिए थपकी का काम किया था। वह ऊँघ रहा था। वह अपने छोटे भाई को विदा कर स्टेशन से लौट रहा था। मुहर्रम के दिन थे। इक्केवाले ने दो पैसे फेंक दिए और छह पैसे माँगने लगा। सुरेश को क्रोध आ गया। वह दो पैसे ठहराकर इक्के पर बैठा था, भला तब फिर वह एक पाई भी अधिक कैसे दे सकता था। सुरेश बोला—चल चौराहे पर। सिपाही सब फैसला कर देगा।

भोला सुरेश इक्के पर जा बैठा। घोड़ा फिर से दौडने लगा। कुछ दूर चल कर इक्केवाले ने लगाम की बाँई डोरी खींची और इक्का बाँई ओर की सकरी गली मे प्रवेश कर गया। सुरेश के मन मे सन्देह ने स्थान कर लिया परन्तु वह रहीम के मनोभावों मे अनभिज्ञ था।

इस मोहल्ले मे अधिकतर मुसलमान ही रहते थे। रहीम ने लगाम थाम ली, इक्का खडा हो गया। तब उसने उतर कर लगाम की रस्सी खोली और रस्सी हाथ मे लेकर जमीन पर खडे कांपते हुए सुरेश से बोला " बाबू सीधी तरह से दो आने पैसे दे दो नही तो खैर नही है। " ' उचक्का कही का ' सुरेश ने कहा। इक्केवाला क्रोध से जल रहा था। आज दिनभर में उसको एक पैसा भी नसीब नहीं हुआ था। भूख से उसके बाल-बच्चे घर पर तड़फ रहे थे। उसे अपने पेट की फिकर नहीं थी। परन्तु वह अपने जानवर

को अपने औरत पुत्रों से भी अधिक प्यार करता था। आज उसे भी एक तिनका चबाने को नहीं मिला था। उसके पेट मे आग जल रही थी। मकान भी उसका पास से था। वह खूंख्वार भेड़िये की तरह सुरेश पर टूट पड़ा और चिल्लाया—तुम्हारा बाबूपन सब मिट्टी मे मिला दूंगा, आज तुझको जीता न छोड़ूंगा। पहले तुझे भुस मे मिला दूंगा पीछे चाहे फाँसी की सजा भोग लूँगा। वह चिल्लाता जाता था और लगाम की रस्सी से सुरेश को कोड़े भी जमाता जाता था। सुरेश के पास अब कोई चारा न था। रहीम की आवाज सुनकर उसकी स्त्री दौड़ी-दौड़ी आई। उसने आकर रहीम के हाथ पकड लिए। रहीम ने ऐसा धक्का दिया कि बचारी नाली मे जा गिरी। रहीम को भविष्य की चिन्ता नही थी। वह यह नही सोच सका कि इसका परिणाम क्या होगा। उसको तो शिकार मिल गया था। वह तो सुरेश को पीटने मे मस्त था। सुरेश अधमरा हो गया था। रस्सी के चिन्ह उसकी पीठ पर अंकित हो गए थे। उधर सुरेश का होश गुम हो रहा था, इधर रहीम भी बदहवाश होता जाता था। उसे भी कुछ सुध नहीं थी। सुरेश की रिस्टवाच तथा फाउन्टेन पेन उसकी आँखों मे खटक रहे थे। यह बाबू गिरी के चिन्ह थे। वह बाबू गिरी का दुश्मन था। वह उसके चिन्हों को भी इस संसार से उठा देना चाहता था। परन्तु उस समय उसे यह ख्याल नहीं था कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। वह बार-बार यही शब्द दोहराता था कि आज मेरे बच्चों को इतने बडे दिन में मुँह में

डालने को एक दाना भी नहीं मिला। उन सबका बदला आज मैं तुमसे लूंगा। मैं क्या स्टेशन से इधर तक के डेढ़ आने पैसे ज्यादा माँग रहा था? न जाने इस प्रकार से वह कितना अण्ट सण्ट बकता रहा। पुलिस मेरा क्या करेगी। आए तो मेरे सामने कोई, मैं एक एक की चटनी बनाकर न छोड़ूं तो नाम रहीम नहीं। इसी बीच में स्त्री दो चार पड़ोसियों को बुला लाई थी। उन्होंने रहीम को पकड़ा। सुरेश बेहोश पड़ा था। रहीम उसकी जेब से एक रुपया निकाल कर बाजार गया और हलवाई के यहाँ से मिठाई लाकर बच्चों के आगे रख दी। और कहा देखो कितना बढ़िया रस गुल्ला है, आज तो पेट भर खा लो फिर चाहे भूखों मरना। उसने उस दोने की किसी चीज पर हाथ नहीं लगाया।

सुरेश विश्वविद्यालय के अस्पताल में पड़ा हुआ था। चोट तो ज्यादा आई थी किन्तु घातक नहीं थी। वह धीरे-धीरे आरोग्य लाभ कर रहा था। वह विश्वविद्यालय का छात्र था तथा हिन्दू होस्टल में रहता था उस रात की घटना उसकी आँखों के आगे नाच रही थी। यदि मनुष्य का कोई अहित हो जाता है अथवा उसके स्वार्थ में कोई बाधा पहुँचती है तो वह उसका कारण पूर्व जन्म कृत कर्म में अथवा तात्कालिक स्वपाप वृत्त में खोजने लगता है। सुरेश आहत हो गया था। उसका कारण वह लोभ समझ रहा था। सुरेश को ख्याल आया कि जब वह ट्रक पर बैठा

था तो कितना खुश था। वह सोच रहा था कि इस इक्केवाले को अच्छा ठगा, दो ही पैसे मे काम चल गया। सुरेश सोचने लगा यदि मेरे मन में लोभ की भावना उदित न होती तो मुझको यह कष्ट न सहना पड़ता। सुरेश दो सप्ताह में भला चंगा हो गया और अपना कार्य फिर सुचारुरूप से करने लगा। उसके मित्रों ने उसको खूब बेवकूफ बनाया। वे बोले तुम निरे बुद्धू हो, तुम युनिवर्सिटी मे पढ़ते हो, तब भी ठुक-पिट कर आगए। बतलाओ तो उस इक्केवाले को। साले को पिटने का मजा चखाया जावे। परन्तु सुरेश ने उनको कुछ उत्तर नही दिया।

पुलिस ने रहीम पर मुकदमा चलाया। उस पर चोरी और फौजदारी का इल्जाम लगाया गया। सुरेश को अदालत में बुलाया गया तथा हाकिम ने उससे पूछा कि तुम इक्के वाले के बारे में क्या बयान देना चाहते हो। सुरेश का मुँह बन्द हो गया। उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। वह बड़ी मुश्किल से कह पाया "मै उसके लिये क्षमा चाहता हूँ।" इसके बाद सरकारी वकील खड़ा हुआ और बोला कि "तुम उसके लिये भले ही क्षमा कर सकते हो, परन्तु सरकार उसको क्षमा नहीं कर सकती। वह समाज के लिये खतरनाक है।" हाकिम ने खड़े होकर फैसला सुना दिया—कानून रहीम को चार महीने की कड़ी सजा देता है तथा ५०) जुर्माना करता है। यदि दोषी जुर्माना नहीं देगा तो उसको २ महीने की और कडी सजा भुगतनी पड़ेगी।"

रहीम की आखो मे आँसू बह रहे थे। वह सुरेश के मुँह की ओर देख रहा था। उसने सुरेश से मुँह से क्षमा याचना नही की, प्रत्युत उसकी आँखें क्षमा की याचना कर रही थीं। रहीम जज से पूछ रहा था कि यदि तुम्हारे भी बच्चे मेरे बच्चों की तरह भूख से तडपते होते, तुम्हारे पास भी तन ढकने को कपडा न होता तो क्या तब भी तुम इस कानून का पालन करते रहते। किसी ने उसकी यह बात नहीं सुनी। सिपाही उसके हाथो मे हथकडी डालकर जेल की ओर ले गये।

—महेन्द्रकुमार 'मानव'

सेवा का मूल्य

"इतनी रात किधर जा रही हो बहिन? इधर तो नदी पूर आरही है!"

"मुझे सब मालूम है।"

"पर इधर कोई रास्ता भी तो नहीं है।"

"यह भी मुझे मालूम है।"

जब उसने उसका इस तरह सूखा उत्तर पाया और उसकी ठंडी साँस जलमग्न नेत्र व दो रोते हुए नन्हे बच्चों को देखा तो उसके हृदय मे अनेक शंकाओने घर कर लिया। अतः वह फिर अपने साहस को एकत्रित कर बोला—

"धृष्टता के लिये क्षमा करना, बहिन! मुझे कुछ भय मालूम पड़ रहा है; इसलिए मैं इतनी रात तुम्हें इधर न जाने दूंगा जब तक कि मुझे कोई उचित कारण मालूम न पड जायगा।"

"कारण जानकर क्या करोगे? जब सारी दुनिया ही उस कारण को जानकर अनजान बनी हुई है तो तुम क्या समझ सकोगे भैया?"

"तुम्हारी इन वेदना भरी बातों से तो मुझे और भी शंका हो चली है, बहिन! साथ से तुम्हारी करुण व रहस्यमय गाथा भी सुनने की उत्सुकता हो गई है आओ, यदि कुछ संकोच न करो तो पासवाला मकान अपना ही है। वहीं पर बैठकर अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाना।"

जाऊं या न जाऊं के असमंजस में पड वह मौन ही खड़ी रही। मुंह से एक शब्द भी न निकाला। जब उसने उसे विचार मग्न देखा तो कहने लगा—"ठिठक क्यों गई बहिन? क्या मुझे भी दुनियाँ के उन नीच विश्वासघाती पुरुषों जैसा समझ रही हो?'

"नहीं भैया, मैं तुम्हें वैसा नहीं समझ रही हूँ, पर इसमें मेरा दोष क्या है? इस स्वार्थी कपटी संसार ने ही तो मुझे इस तरह विचार करने पर मजबूर कर दिया है?"

"यह तो ठीक है, बहिन! लेकिन सभी अँगुलियाँ तो एक सरीखी नहीं होती। तालाब में कीचड पत्थर ही तो नहीं होता, उसमें कमल भी होता है। अब तुम्हीं

बताओ, मैं तुम्हे किस तरह विश्वास दिलाऊँ ? ”

उसका उसपर पूरा विश्वास होने लगा, पर कुछ सोचकर वह एकदम बोल उठी—“ मकान पर जाकर क्या करूँगी ? मुझे तो जाने ही दो, भैया । ”

“ वास्तव मे, बहिन, अनेक दुःखों के भार को ढोते ढोते तुम्हारा हृदय विदीर्ण हो गया है। घबराओ नहीं, धीरज से काम लो, बहिन ! तुम्हारी विषाद भरी कहानी सुन शायद तुम्हारी सेवा कर सकूं ।

भैया, मैने अभी तक किसी से अपनी यह गाथा नहीं कही है, लेकिन तुम्हारे ही आग्रह से मैं तुम्हे कह रही हूं ।

“ वैसे प्रारम्भ से ही हमारी परिस्थिति साधारण थी । पतिदेव विद्वान थे और उनमे यह विशेषता थी कि वे मुँह देखी बात कभी नही कहा करते थे । वे स्वतंत्र विचार के मनुष्य थे । चापलूसी करना तो उन्हे आता ही न था । इसी कारण बडी-बडी जगह नौकरी मिलने पर भी कहीं वे लम्बी मियाद तक न टिक सके । किसी तरह कुछ प्राइवेट विद्यार्थियो की ट्यूशन कर ही वे अपनी गृहस्थी का गाड़ा धकाते थे । वे सच्चे साहित्य-सेवी थे । उन्होने अपने जीवन में कई ग्रन्थ लिख डाले, पर पैसे के अभाव से उनमें से कई प्रकाशित न हो सके । अतः उनकी साहित्य-क्षेत्र मे भी वह कदर न हो सकी जो कि एक होनहार कलाकार की होना चाहिए थी । जब कोई उनसे इस मामले मे बात करता तो वे एक ठंडी साँस लेकर कह देते—‘ भाई,

पराधीन देश मे कलाकारो को उचित सम्मान मिलाही नहीं करता। इसमें किसी का क्या दोष ? ' लेकिन वे निराशावादी भी नहीं थे। वे कहा करते थे—' मेरे साहित्य को कोई मान न दे तो न सही, लेकिन यदि मेरा साहित्य ठोस है,—सार गर्भित है, तो आज नहीं तो कल, कल नही तो एक न एक दिन अवश्य उसका उचित मूल्य होगा। ' वे साहित्यक्षेत्र के अलावा राजनैतिक क्षेत्र में भी सक्रियता से भाग लेते थे और हमेशा दिल मे यही भावना रखते थे कि वक्त पड़ने पर देश के लिये उनका जीवन काम आय। वैसे राष्ट्र सेवा उनके जीवन का एक प्रमुख अंग बन चुकी थी, पर उनकी परिस्थितिए उन्हें अन्तिम लक्ष्यतक पहुँचने मे बाधायें उपस्थित करती थी। जब उन्हें मेरा और इन छोटे बच्चो का ख्याल आजाता तो वे मन मारकर चुप रह जाते। जिन्हें हम आत्मीय कह सकें ऐसा तो कोई था ही नहीं।

एक ऐसा समय आया जब देश में एक कोने से लगाकर दूसरे कोने तक बड़ा भारी आदोलन चला। उस वक्त क्या बच्चे, क्या बूढे, क्या जवान सभी के सोये हुए हृदय जाग उठे। ऐसे क्राति के युग में भला वे कब मौन रहने वाले थे। भभकती हुई ज्वाला में कूद कर अपनी आहुति दे बैठे।

वे तो शहीद हो गये, पर मुझपर तो मुसीबतो का पहाड़ टूट पड़ा। सिवाय ईश्वर के कोई हमारा रक्षक नहीं रहा। मदद के रूप से भिक्षा मांगकर मैं अपना स्वाभिमान

खोना नहीं चाहती थी, इसलिये मैने मजदूरी कर ही पेट भरना उचित समझा ।' पर दानवी दुनिया ने वहा भी मुझे चैन से नही रहने दिया । धूर्त बदमाशोंने मेरी दीनता का नाजायज फायदा उठाने की नीयत से मेरी इज्जत पर भी धावा बोलना चाहा । लाचार होकर मुझे मजदूरी छोडनी पड़ी । ऐसी नाजुक परिस्थिति मे मकान मालिक ने भी जवाब दे दिया । क्या कहूँ भैया, पिछले दिनो मुझे निराहार भी रहना पडा है । मुश्किल से बच्चों को थोडासा दूध पिला सकी । इसलिए जीवन से बिलकुल ऊबकर तमाम झंझटों से बचने के लिये अपनी जीवन लीला को समाप्त करदेना ही मैने ठीक समझा है ।

“ बस बहिन, मैं सब समझ गया । जिस जनता के पीछे कार्यकर्त्ता प्रसन्नता से अपने प्राणो की बलि-चढा देते है वह उनके आश्रितो का कुछ भी ख्याल न करे, कितने शर्म एव दुःख की बात है । पराधीन देश को इसी तरह सेवा का मूल्य मिला करता ह । खैर, मेरी एक प्रार्थना है ”

प्रार्थना शब्द सुन पहिले तो वह कुछ सहमी, फिर कहने लगी, “ मै किस लायक हूँ भैया, फिर भी कहो तो ”

अभी तक अनेक कष्टों का, बहिन, तुमने वीरता पूर्वक सामना किया है, पर अब आज से इसे ही अपना घर समझो। घर में माताजी, पत्नि और छोटा भाई है । मजदूर है, मजदूरी कर अपना पेट पालते हैं । जो कुछ रूखी बासी हमें मिले उसमे तुम भी हिस्सा बटाना और अपने

दिन गुजारना । ”

“ तुम्हारी इस महानुभूति के लिये धन्यवाद, लेकिन भैया क्षमा करना, मुझसे यह न हो सकेगा । मैं अब अपने जीवन के चन्द दिनों के लिये किसी का अहसान नहीं लेना चाहती । ”

“ इसमें अहसान की बात ही क्या है, यह तो मनुष्य का—हम गरीबों का कर्तव्य है । बहिन, तुम अपने लिये नहीं, इन बच्चों के लिये कुछ सोचो ”

बच्चों का नाम लेते ही उसकी आँखों से जल की बूंदे टप टप गिरने लगीं । सभवतः ये बूंदे ही स्वीकृति-चिन्ह थीं ।

—जगन्नाथ चौधरी 'इच्छुक'

आधुनिक कपट-कला की मनोरंजक कहानी

" गिरे काट "

बुड्ढा रोदन स्वर मे चिल्लाता हुआ चला आ रहा था, " मेरे सीने पर से पहिया उतार दिया । कम्बख्तो जरा देखकर चलाया करो । बाबूजी आज मै नही बच सकता । मुझे पीड़ा बहुत है । यह मेरे सीने पर से पहिया उतार गया । "

मै उसे हर प्रकार से शाति देता चला जारहा था । " तुम किसी बात की चिन्ता मत करो । हम तुम्हें अभी अस्पताल पहुँचाये देते हैं । "

बुड्ढा दर्द भरे स्वर मे बोला, " बाबूजी मैं गरीब आदमी हूं । मैं अस्पताल कैसे.. . "

" तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो। सब खर्चा मै दूँगा। " मैने बात काट कर कहा।

बूढा अपने पक्ष की बात सुनकर और भी जोर से कराह कर कहने लगा " मेरी थोडीसी आयु बाकी रही है। भगवान ने इसे भी सुख से नहीं बीतने दी। इन तागेवालो का सत्यानाश हो जाय। मुझे देखा भी नही। ऊपर ही दे दिया। मेरे सीने पर से पहिया उतार दिया, हाय बाबूजी भगवान आपका भला करे जो आपने मेरे ऊपर इतनी दया की। मुझे उठा लाये। वरना आज मृत्यु तो हो ही जाती। अब भी भगवान जाने मैं मरूं या बचूं। हाय बाबूजी मेरी सारी उम्र बडी कठिनाई में व्यतीत हुई है। मैने सुख का स्वप्न मे भी अनुभव नही किया। "

मै बूढे की आत्म कथा सुनने को कुछ उत्सुक हुआ। समय भी नहीं कट रहा था। जाना दूर था। बूढे से उसकी आत्म-कथा सुनाने को कहा।

बूढे ने कराहते हुये कहना शुरू किया। " हम पहले बडे धनाढ्य पुरुष थे। मेरे पिता ने सारा रुपया बुरे कार्यों मे व्यतीत कर दिया और एकबार शराब पीकर लडते २ ही उनकी मृत्यु होगई। मै अपने पिता का इकलौता बेटा था। मेरी शादी भी होचुकी थी। सारी जमीन जायदाद निकल चुकी थी। कुछ रुपया बचा था उससे कुछ समय तक गुजारा चला। लेकिन एक दिवस वह आया कि हम दाने दाने को दुखी होगये। कुछ बस न चला। मै पढा लिखा भी न था

जो कहीं नौकरी कर लेता । अन्त में विवश होकर मैंने फौज में अठारह रुपये पर नौकरी कर ली । हर महीने पन्द्रह रुपये घर भेजता । इस प्रकार घर का खर्चा चलने लगा । मुझे भी कुछ शान्ति मिली । पर भगवान की मर्जी मुझ पर एक मुसीबत आई । मेरे पेट में गोली लगी से चार माह खाट पर पड़ा रहा । " बुड्ढा कुछ रोकर—" अगर मैं वहीं मर जाता तो आज के ये दिन नहीं देखने पड़ते " आँसू पोछ पुन. कहना शुरू किया । " मुझे बड़ा भय मालूम होने लगा । मैं यही सोचने लगा कि कब सन्धि हो और कब मैं नौकरी छोड़ूँ । अन्त में वह दिवस भी आपहुँचा सुबह को सुलह हुई, मैं दो घंटे बाद ही साहब के पास स्तीफा लेकर पहुँचा । मुझे आशा थी ही कि लड़ाई फिर होगी और बाबूजी आप अपनी आँखों से ही देख रहे हैं लड़ाई हो ही रही है । स्तीफा देखकर साहब बोला " वेल टुम काहे को स्टीफा देता है, लड़ाई सुलह होगया । "

मैंने कहा " मुझे अब नौकरी नहीं करना है । भाग्य में जो कुछ लिखा होता है होकर रहता है । उन्होंने स्तीफा मंजूर कर लिया । मैं तनखा लेकर घर आया । अठारह रुपये कितने दिन तक चल सकते थे । घर की यह दशा देखकर मेरी स्त्री एक दूसरे के साथ भाग गई । जब तक पैसा पास तब तक सब का साथ । मैं अपने पेट लायक कमा ही लेता था । पर भगवान की मर्जी मुझ पर फालिज (लकवा) गिर गया । यह देखो बाबूजी मेरा बाया धड़ कुछ काम नहीं

करता । अब मुझ पर और भी आफत आई । कोई पानी देने वाला नहीं । आपके समान ही एक बाबू बड़े दयालु थे । उन्होने मेरे ऊपर बडी कृपा की । मुझे अस्पताल भेज दिया । भगवान उनका भला करे । लेकिन फिर भी मौत न आई । जो मृत्यु चाहता उसे मृत्यु नही आती । मै कुछ ठीक हुआ, लकडी लेकर धीरे धीरे इधर उधर चलने लगा । घर २ भीख माँगता जो कुछ मिल जाता खालेता । एक लालाजी ने दया करके पुल के पास झोपडी बनादी । उसी मे पडा रहता । किन्तु किसी बीडी या सिगरेट के शौकीन ने उस पर भी कृपा की । वह भी जल कर खाक । अब तो उस जामुन के नीचे ही पडा रहता था । पर भाग्य की बात । हाथ मे भीख माँगने के लायक भी न रहा । रास्ते मे चला आरहा था । तागे वालो मे भाग हो रही थी । मैं बहुत बचा न चल सकने के कारण वहीं गिर पडा और एक तागा वाला इसका सत्यानाश हो जाय मेरे ऊपर से निकाल कर ले गया । वह सरपट गया । मेरे ऊपर इतनी भी दया न की कि मुझे उठा तो देती । हाय ! निर्दयी तुम्हारा किस प्रकार भला होगा । बाबूजी आप बडे दयालु है । भगवान हृदय वालो को ही बडा बनाता है ' बुड्ढे की यह दर्दभरी कहानी सुनकर मेरी आखो मे पानी आगया । मै सोचने लगा ससार मे मनुष्यो को कैसी कैसी विपत्तियो का सामना करना पडता है । मुझे बुड्ढे की स्थिति पर बड़ा ही तरस आरहा था और मैने सोचा भी यदि यह हास्पिटल मे ठीक हो जाय तो उसे अपने यहाँ रख लूं ताकि उसकी शेष आयु सुखमय व्यतीत

हो जाय ।

तांगा रुक गया । मेरा आफिस आगया था । मैं जल्द ही उतर गया । टेलीफोन करके डॉक्टर से बातचीत की । मैं बाहर आया, मगर वहां बुड्ढा न था । मैंने भाई से पूछा कहाँ गया ? कहने लगे मैंने उसे पाच का नोट दिया और अन्दर आया कि वह गायब ।

मैं आश्चर्य मे डूब गया । और उसके प्रति कुछ न सोच हम दोनो घर चले गये । भाई साहब सहसा चौंके । यह क्या दस दस के दो नोट गायब और जेब भी गायब ।

—निहालचन्द ‘अभय’

पददलित मानवता और उसकी सर्वकालीन अमरता की दर्द भरी, किंतु गौरवमयी कहानी

मनुष्य

हाँ, वह मनुष्य ही तो था। उसे देवता मानना तो शायद उसके महत्व को कम करना है। बचपन से उसके साथ रहा, खेला-कूदा, पढालिखा। वैसे तो मरने के बाद श्मशान घाट पर अच्छे बुरे सभी की प्रशसा और गुणगान किया जाता है। सभ्यता या शिष्टाचारवश बुराइयो को भी ऐसा ही रूप दिया जाता है कि वे भलाई या गुण मे बदल जावे। इसीलिए मेरे मित्र कोमलचन्द्र की चिता के आसपास बैठ कर जब कोई कहता " कितना भला आदमी था; कभी हमने उसे झगडते हुए नही देखा। " कोई कहता,

" इतना पढ़ालिखा सहनशील और सरल प्रकृति का मनुष्य तो लाखों मे एक भी न मिलेगा। " एक नवकुमार ने कहा, " कोमल बाबू हमारे प्रान्त के अच्छे साहित्यकार थे; उन्होंने कई ग्रथ लिखे हैं। सारे भारत का भ्रमण कर ज्ञानार्जन किया है। पर कही वे जमकर रह होते, कहीं उन्हें प्रोत्साहन या सहारा मिला होता, तो वे प्रान्त का ही नही सारे देश का गौरव बढ़ाते। " एक प्रचारक सज्जन बोले, " रत्न थे रत्न ! यदि बाबूजी दुनिया की राह पर चले होते, समय और स्थिति देखकर कुछ खटपट की होती, कुछ प्रोपेगेंडा या आत्म प्रचार किया होता, तो आज, आज मालामाल हो जाते। " एक वृद्ध जो अब तक चुपचाप जब्त किये बैठे थे, बोले, " दुरवस्था, बबुआ की न होती तो क्या होता ? किसी को तो कभी इकार किया नहीं। जिसने माँगा उसे लुटाया। पात्र कुपात्र का कभी ध्यान नही रखा। जो आया उसी के साथ हो लिया। किसी के विवाह की दौड़ धूप है, तो किसी के साहित्य प्रचार की लगन, तो किसी के पढने लिखने की चिता। "

सब कुछ कह रहे थे, पर मैं जिसके जीवन में घुलमिल गया था, जिसके जीवन के चढाव-उतार, ऊँच-नीच सुख-दुख देखे थे, मौन था। कुछ सोच नही पाता था। मैं कुछ कहना चाहता, पर कह नहीं पाता था। मुझे शायद सबसे अधिक दुख था, समवेदना थी, पर मैं उन्हे सुनता और मुझे उनकी बात पर, श्मशान-प्रशंसा और संसार की प्रथा

और स्वरूप पर हँसी आ आ जाती थी, जिसे मैं बड़े कष्ट से रोक पाता था। बातों के सिलसिले में लोग चाहते थे, मैं भी कुछ बोलूँ, मैं कोमल बाबू का घनिष्ट मित्र आज चुप क्यों हूँ। मुझ में हँसी की क्षीण रेखा क्यों आ आकर रुक जाती है। सामने धाँय धाँय चिता जल रही थी, और मैं मौन था।

आज मेरा चित्त शान्त है। मैं सोचता हूँ, कोमल में ऐसी कौनसी बात थी, जिसने प्रत्येक व्यक्ति को उसके शत्रु को भी—पर उसकी किसी के प्रति शत्रुता तो थी नहीं—आकर्षित कर लिया था। उसमें कोई विशेषता, विचित्रता या असाधारणता तो कभी दिखाई दी नहीं, उसके जीवन का एक क्रम, कुछ धारणायें अवश्य थीं। उसे आप मनुष्य समझें या और कुछ।

[२]

वह मनुष्य था, और मनुष्य मनुष्यों के द्वारा कभी पहचाना जाता नहीं, इसलिए वह कभी पहचाना गया नहीं।

बचपन से ही वक्तृत्व कला में वह निपुण था। हम सब मित्रों और सहपाठियों पर उसका अच्छा प्रभाव था। पर इसके अतिरिक्त वह बोलता फिर भी कम ही था। जब वह सुनता था, तब मैंने कई बार यह अनुभव किया है, कि वह चाहे हम लोगों की बातें सुने, और चाहे साहित्यिक वक्ताओं के भाषण, सुनते समय वह गंभीर रहता और

बहुधा अपने में लीन रहता। उसकी प्रवृत्ति ही कुछ ऐसी पड़ गई थी, कि वह किसी के भाषण या बात में से सार-सार चुनता और सारहीन को छोड़ता और उस समय वह चिंतनरत हो जाता था।

अपने मित्रों का वह बराबर ख्याल रखता था। सेवा का कोई अवसर कभी उसने छोड़ा नहीं। अछूतों को उसने उस समय पढ़ाना प्रारंभ किया था, जब लोग इस बात से नाक-भौं सिकोड़ना तो दूर, इसका मजाक उड़ाते और घृणा करते थे। बचपन से ही वह कम, किन्तु तीव्र और ऐसी बाते कहता जो भविष्य मे ठीक उतरती।

उसकी एक आदत और थी। वह बेकार भीड़ मचाना पसद नही करता था; दिखावा उसे पसंद न था। जहाँ बहुत से काम मे लगे हों, और काम कम हो, वहाँ वह जाकर यह दिखाना कि वह भी काम कर रहा है, उसे पसंद न था। पर जहाँ काम करनेवाले कम होते या काम की आवश्यकता होती, वहाँ वह अपने को अड़ा देता, खपा देता। अपने रक्त से सेवा-स्थल को वह सींचता। वह अनुकरण प्रिय, या भेड़ो के समान अनुकरण प्रिय, या सेवा फैशन-पसद न था। वह हमेशा सोचता, कि आवश्यकता कहाँ है, कमी कहाँ है, नया क्षेत्र कहाँ है। विज्ञान का तो नहीं, परन्तु लोक सेवा और साहित्य सेवा क्षेत्र का वह आविष्कारक ही था।

उसके मस्तिष्क का संतुलन ठीक था, वह विभिन्न दृष्टिकोणों से पदार्थ या विषय के भीतर तक भी प्रवेश

कर ठीक-ठीक जज कर सकता था। उसकी दृष्टि पैनी थी, और वैसा ही उसका शब्द-धारा-प्रवाह प्रखर। वह किसी पर आघात या आक्रमण नहीं करता, अपने पर हो तो सह लेता, पर इनके अयोग्य जो होते उन पर यदि प्रहार होता, तो वह खम ठोककर खड़ा हो जाता और फिर उसे मैदान से हटाना कठिन था।

वह सब से भला था, पर सब से बुरा भी दिखाई देता था, क्योंकि उसकी सज्जनता मीठे फल के सदृश अधिक पक गई थी, इसीलिए लोग उसकी अति सज्जनता का दुरुपयोग भी खूब ही करते थे। उसकी शिक्षा उच्च और व्यवस्थितक्रम से नहीं हुई थी। प्रतिभा और अध्यवसाय के बल पर उसने योग्यता और सम्मान प्राप्त किया, किन्तु उसका लाभ उसे मिला रक्ताभाव के रूप में। लोग उसका रक्त अधिक, मूल्य से अधिक चाहते या मुफ्त में। यदि वह दे सकता तो भला था, नहीं तो अकृपापात्र, क्योंकि वह छोटा था, तुच्छ था, और था नगण्य।

[३]

वह बाल-बच्चों वाला था। उसकी पत्नी ने कहा, "आज सवेरे इतनी जल्दी कहाँ जा रहे हो? भोजन करके बाहर निकलते। फिर न जाने कब वापिस लौटो।"

"नहीं, थोड़ा सा तो काम है, जल्दी ही लौट आऊँगा।"

"जल्दी लौट आओगे खाक! साक भाजी लेते आना। मैं बनाऊँगी क्या?"

" साक भाजी लेता आऊंगा ? और काम कौन करेगा? क्या बारह बजे तक तुम बैठी ही रहोगी ? "

" मैंने तो पहले ही कहा था, बारह के पहले तुम्हारा कोई काम खतम हुआ है कभी, पर वह काम क्या है, मैं भी तो सुनूं । "

" महेश को जानती हो न उसकी शादी पक्की हो गई है, कल मिला था। उसकी बहू के लिये साड़ी खरीदना है।"

" महेश की बहू के लिये साड़ी खरीदोगे ? और रुपये कौन देगा ?

" महेश तो तुम्हारे साथ आया नहीं । "

" रु. .प.. ये, महेश के पास इतना कहाँ रखा है ? लड़की वाला मानता नहीं, इसलिये कारज उलझना पड़ रहा है । "

" तो तुम्हारे पास रुपये आये कहाँ से ? आज बीस वर्ष हो गये, गौना करके लाये । बुड्ढे होने आ रहे हो, मेरे लिये तो आज तक अपने हाथ से बिना कहे, अपने मन से सफेद साडी भी लाकर न दी । "

पत्नी और अपने जीवन का कटुसत्य उस पर प्रकट होगया । मौन भाषा मे नेत्रो के माध्यम से उसने कहा, " प्रिये ! तुम सत्य कहती हो । मैं जानता हूँ । मै भोला और मूर्ख नही हूँ । काश, तुम मेरे हृदय को चीर देख सकती । रानी मेरी, मैं तुम्हें आभूषणों और वस्त्रो से ढककर अपने नेत्र-पलकों पर बैठा लेता । हृदय के सिंहासन पर

से तुम्हें उतरने न देता, पर क्या करूँ, मेरा हृदय मेरा नहीं। जिन तत्वों से मेरा निर्माण हुआ है, उनके द्वारा जगन्नियंता की कुछ और इच्छा है। जगद्धात्री माता भी लोक-जीवन के निर्माण के लिये हम दोनों की आहुति चाहती हैं। तुम्हारा कष्टमय जीवन, उस जीवन की व्यथाएँ और कचोटें उनके मधुर मेवा हैं, उनकी पूजा की सामग्री हैं, और मेरा लघुतम जीवन उस महान लोक-जीवन, विश्व-राष्ट्र निर्माण के स्वागत का पाँवड़ा।"

मनुष्य पत्नी के आह्वान पर भी घर में न ठहरा. उसका मार्ग स्पष्ट था, और वह गया।

[४]

कोमल एक स्थान पर आजीविका के हेतु जाया करता था, पेट के लिये उसे दर-दर फिरना पड़ता। उसे अपना रंग रूप, अपनी वेश-भूषा बनाना पड़ती, सभ्यता सुन्दरी को अपनाना कभी-कभी उसे अनिवार्य हो उठता। वैसे वह सादगी पसन्द आदमी था। कुछ पहिन लिया, कुछ खालिया। किसके सामने किस समय क्या पहिनना, क्या न पहिनना इसका उसने कभी ध्यान नहीं दिया। कहाँ जा रहा है, कैसे जा रहा है, क्या देख रहा है, उसका उसे पता नहीं।

उस दिन उसे एक विशिष्ट स्थान पर संभवत. आजीविका के लिए ही जाना था। उसके जूते फट गये थे, वे पहिने नहीं जा सकते थे, फिर भी वह उन्हें छुट्टी न दे रहा था। उसकी पत्नी ने कई बार कहा था, "अब इनका मोह छोड़ो।

तुम्हारी इतनी कंजूसी से तुमने अब तक क्या बचा लिया है, और क्या बचा लोगे ? ” कोमल ने कई बार पत्नी से कहा है, “ अभी इनमे हो ही क्या गया है ? अच्छे तो हैं । चार छः आने की सिलाई मे तो ये नये हो जायगे । ” तब पत्नी ने कहा था, “ तब तो दो चार रुपयो मे तुम भी नये हो सकते हो ! इस उम्र में ही बुड्ढे क्यों हुए जा रहे हो ? ” और तब गम्भीर कोमल सच्चा मुसकराया था ।

इसीलिए जब वह बाहर गया तो, सचमुच अपने पुराने जूतों का मोह छोड नये ले आया था । सोचता पत्नी आज प्रसन्न होगी । दोनों खिलखिलायेगे । उसके शुष्क शरीर और मन मे जीवन के उल्लास का रस भरा रहा था । सोच रहा था, अब जाते ही गिरू की माँ से कहूँगा, “ लो नया जवान बनकर आ गया हू । शादी भी हमारी फिर से हो जाय । ” इसके बाद वह सोच न पाया था, कि पत्नी इसका क्या उत्तर देगी या दे सकेगी ।

मनुष्य जब घर पहुँचा, उसका पंच वर्षीय बालक मुन्नू का नये जूते देख, बोला “ बाबूजी हम भी नये जूते लेगे । ऐसे ही लेगे । हमे तो ऐसे ले ही नहीं दिये । ” सप्त-वर्षीय विमला बोली, “ बाबूजी अब हम ये बूट नही पहनेगे । हम तो मेडिल लेगे । कल ही बाबूजी कल ही ले देना । ” कुछ समय बाद दस वर्षीय गिरीश पढ़कर थका माँदा स्कूल से भूख-भूख चिल्लाता आया, पर ज्योंही बाबूजी के जूते देखे, बोला, “ बाबूजी ये जूते कब लाये ? ये देखो हमारे जूते कैसे फट गये है, पहिने भी नही जाते, आपने

तो कहा था, रविवार को तुझे भी ले चलेंगे।"

बाबूजी मुन्नू और विमला को तो समझा सकते थे; समझा रहे थे, पर गिरीश को कैसे समझाते! उसके पैने और चुभते सत्य की उपेक्षा कैसे करते, उसके सामने तो वे चोर और अपराधी थे। उसके जूते वास्तव में पहिनने योग्य न थे, पर वह समझदार बालक धैर्य व आशा में उन्हें घसीट रहा था।

[५]

मनुष्य ने जीवन-यात्रा अटूट आशा, अचल विश्वास, उन्मादकारी उल्लास और एक ध्रुव ध्येय को लेकर प्रारंभ की थी, किंतु लक्ष्य तक पहुंचते पहुंचते उद्धव की ज्ञान गठरी के समान ये मार्ग में बिखरते गये, और वह प्रति पग पर छूछा रहता गया।

उसके मित्र थे, सहयोगी थे, संबंधी थे, उसके प्रशंसक थे, शिष्य थे। उसकी प्रतिभा के कायल भक्त थे। उसका एक संसार था, बहुत बड़ा और बहुत छोटा। इन सब की भीड़ में वह एकाकी था; एकाकी अपने को पाता था।

उसने देखा उसके सामने कुछ दूरी पर एक इमारत खड़ी है। सुनहरी, चमकीली, गौरव से सिर उठाये। उसके एक द्वार से उसके सदृश कई युवक उल्लास से प्रवेश कर रहे हैं, और दूसरे द्वार से निकल रहे हैं। पीठें उसकी ओर हैं। वह उनके मुखों को देख नहीं रहा है। वह इमारत के पास पहुंचा। उसने देखा इसके वासी कैसे उत्साह, अवसाद, हर्ष विषाद से आ जा रहे हैं। कोई सुखी है, कोई क्लांत, पर

कोई उफ नही करता; कोई असंतुष्ट नहीं । उसने सोचा रास्ते मे यह इमारत पड़ी है, इसमे से ही क्यों न निकला जाय । जब वह वहाँ पहुचा किसी ने उसका स्वागत किया, कोई चौंका, कोई उसे देखता आगे बढ गया, कोई रुक कर कुछ पूछने लगा, फिर एक दुबली पतली मरीज सी आकृति उसे दिखाई दी । सब उसके पास से हो हो कर जा रहे थे, वह डर रहा था, पर मार्ग उसके पास से ही होकर जाता था । उसे वहाँ जाना पड़ा । उसने देखा जो वहां कर बद्ध हो उस आकृति को साष्टाग प्रणाम करता है, वह एक सकरे मार्ग मे से जाने दिया जाता है, जहाँ, जिसके अंत मे एक हरा भरा मैदान कॉटो से घिरा हुआ स्वतंत्र विचरण करने के लिये छोड दिया गया है । उसमे फल-फूल के अनेक वृक्ष हैं, अमृत के झरने है, अभीप्सित पदार्थ है, उसमें पशु सदृश मानव समूह किलोल कर रहा है । वहीं यथास्थान रक्त के कुंड है जिनमें से रक्तपान करने के लिये मैदानवासियों को प्रोत्साहित किया जाता है । वही एक ओर एक अग्निकुंड है, जिसमे कतिपय दुस्साहसी गोता लगाते हैं, और सफलता से बाहर आकर अनेको को अग्निकुंड में स्वाहा कर सकने की शक्ति से संपन्न हो लौटते है । इन मैदान वासियो की आकृति और हृदय तो मनुष्य के से हैं, किंतु वहा वे मनुष्य से भिन्न दिखाई देते हैं ।

उसने देखा, पर, जो उस आकृति को पहचान नहीं पाते हैं, उसके लौह हस्त एवं रक्ताभ नेत्रों को नहीं देख पाते हैं, उन्हे वहाँ स्थान नहीं मिलता, वे निकट के ही एक

द्वार से शीघ्र बाहर कर दिये जाते है। इस द्वार [illegible] । ऊबड-खावड पथरीली भूमि पर से उन्हे जाना पडता है।

मनुष्य ने हरेभरे मैदान मे जाना पसंद नही किया। वह इसी द्वार से निकाला गया। बाहर उसके सामने ऊबड-खाबड़ पथरीली और ऊँची-नीची जमीन थी। सुदूर पर उच्च पर्वतमालाएं दिखाई दे रही थी। वह मनुष्य था, अपने उक्त मार्ग से ठोकर खाकर गिरता-पडता आगे बढा। गिरि-मालाओ पर चढा तो क्या देखता है कि कुछ निकट, कुछ दूर उच्च मचो पर पाषाण मूर्तियें-सी खडी हुई है। शिल्पकार ने उन्हे इतना सुन्दर गढा है कि वे बोलती-सी नजर आती है। उनके नेत्रो मे भाव, उनके हाथो मे आह्वान है! वे जैसे मनुष्य को बुला रही हो। मनुष्य उनकी सजीवता पर मुग्ध हो आगे बढा। उसने देखा इन पाषाण मूर्तियो मे काश हृदय होता। उनके नेत्र एक विशेष ओर न देखकर सब ओर देखने की शक्ति रखते।

इन्हें देखकर कोमल को ऐसा लगा जैसे वे कह रहीं हो, हँस रही हो, "अरे तू मनुष्य है! तू ही तुच्छ मानव है!! तेरे ही लिये इतना हाहाकार है!!! देख, जरा हमारी तरफ भी देख। हम पाषाण हैं, तो क्या हुआ? पर है कितनी विशाल! कितनी उच्च, कितनी महान। तू मनुष्य हमारी पूजा करता है, हम तुझे वरदान देती हैं। आश्रय देती है। तू हमारी चरण रज छूकर तृप्त होता है और हम तुझे ठुकराकर गौरव से सिर ऊँचा रखती हैं। आ तू भी हमारे आश्रय में आ, और हम तुझे तेरी मुक्ति का द्वार बतायेंगी। हमारे सौंदर्य को देख, हमारे बनाने वाले कलाकार

को भूल जा,"।

कोमल चौंका, भयभीत-सा होना चाहता था। उसे चक्कर आ गया, वह गिर पड़ा। जब उसे होश आया उसने कहा "मूर्तियो! मानता हूँ तुम्हारी उच्च स्थिति को, दाद देता हूँ तुम्हारे गढ़नवाले कलाकार को। काश वह मिलता उसके हाथों को चूम लेता। पर मैं मनुष्य हूँ, तुम पाषाण। तुम सीमाओ से घिरी हुई और मै सीमाहीन। तुम्हारी सजीवता झूठी है, और मेरी सजीवता का परिचय तो मैं तुम्हे अभी देने वाला हूँ। तुम नही जानती, मै ही तो कलाकार हूँ। मैने तुम्हें बनाया है, मै तुम्हे नष्ट कर सकता हूँ, और पुनः तुम्हारे जैसी अनेक गढ़ सकता हूँ। तुम्हारी महानता मेरे द्वारा प्रदान की हुई है। मैं युग-युग मे अमर रहने वाला और तुम युगो के अनुरूप अपने को बदलने वाली।" और ऐसा कह उसने पाषाण मूर्तियों को गिराना शुरू किया। वह उन्हे गिराता ही रहा, गिराता ही रहा। पर, पर एक दिन कोमल का काम खतम हुआ, और वह आगे चल पड़ा नव निर्माण करने, उसका निर्माण कार्य प्रगति पर था। वह अधिक थका हुआ था, पर एक दिन वह मनुष्य ही तो था न, लड़खड़ा कर गिर पडा। वही मनुष्य है यह कोमल। इसकी मुख मुद्रा को देखो कितनी शान्त और प्रसन्न है, और तुम उन मूर्तियों को देखना चाहो तो वहाँ जाओ और देखो, आज भी जैसे वे अंग-अंग कराह रही हैं।

—शिखरचंद.

भावुकता और भक्ति-भावना से भरी भारतीय जीवन के एक गंभीर पहलू पर प्रकाश डालने वाली कहानी

अछूत

नैना नामक एक अनाथ भंगिन बड़ी सुन्दर सुकुमार और अलबेली-सी थी। उसके अल्हड़पन पर मुहल्ले भर के लोग मोहित से थे। सबों की कृपापात्री थी। पड़ोस के सिरे पर एक मन्दिर था गोपालजी का। उसके पुजारी थे माधव चतुर्वेदी। वे थे बड़े कट्टर हिन्दू और भगवान् गोपालजी के परमभक्त। वे बड़ी श्रद्धा तथा नियम से पूजा करते थे। शहर में कहीं भी कुछ पूजा-पाठ, कथा इत्यादि होती तो वे ही बुलाए जाते थे।

इस मन्दिर मे साझ-सबेरे आरती होती थी, उस समय आस-पास के अच्छी स्थिति वाले आया करते और अपनी-अपनी श्रद्धा व प्रेम का दिखावा कर जाते थे। और वह गरीब अछूत नैना भी आती, भीतर तो भला उसकी परछाईं के जाने तक की मनाई थी, वह मंदिर की सीढ़ियों के पास ही बाहर बैठी रहती, घंटे घडियाल की आवाज सुना करती और मन ही मन गोपालजी का स्मरण किया करती। बेचारी ने कभी भी गोपालजी नही देखे थे, वह कल्पना करती कि उनकी मूर्ति कैसी होगी, वे कैसे होगे, वह कभी सोचती वे गोरे होग, कभी सोचती, काले होंगे। फिर किसी भाति भी अपने को धीरज न दे सकती। आखिर वे है कैसे?

मन्दिर से बाहर आने वालो से पूछती गोपालजी कैसे हैं? सभी हँसते उसके इस भोले से प्रश्न पर—उसकी सहज मूर्खता पर—और बिना बताए ही अपनी राह लेते।

[२]

आज सवेरे नैना मन्दिर के आगे की सडक पर झाड़ू दे रही थी और मन्दिर के बाहर के चबूतरे पर माधव चतुर्वेदी वायु-सेवन कर रहे थे। नैना जब झाड़ू दे चुकी थी उसने सीढ़ी के पास आकर पुजारी से पूछा—पुजारी महाराज! एक बात पूछूं, बताइएगा?

पुजारी ने रुक कर पूछा—"क्या?"

"गोपालजी कैसे है गोरे या काले?"

" न गोरे न काले, वे श्याम रंग है। "

" साँवले ? "

" हाँ "

" वे मोटे हैं या पतले ? "

" न मोटे न पतले, मझोले शरीर के। "

" तब तो बडे सुन्दर लगते होंगे ? "

" बडी ही मन-मोहिनी मूरत है। "

"सच ?" नैना ने अपने नैनो को पसारते हुए कहा।
" सच " कह कर पुजारीजी टहलने लगे। नैना वहीं बैठ गई और लगी सोचने किस प्रकार गोपालजी के दर्शन करूं।

पुजारीजीने पूछा—क्या सोचती है नैना ?

" कैसे देखूं भगवान् गोपाल को ? "

" तू भी एक असम्भव-सी बात सोचने लगी। नैना चौंक उठी, बोली—क्यो ?

पुजारी ने कुछ बना कर कहा—तू अछूत है।

नैना ने एक निश्वास छोड़ी, धीरे से गुनगुनाई, मैं अछूत हूँ ! फिर जोर से बोली—" क्या नहा धो कर भी नही ? "

" नहीं "

" दान देकर, प्रायश्चित करके भी नहीं ? "

पुजारी न रोषपूर्वक कहा—" नही. नही.. नही "

नैना ने ढिठाई से कहा,—" क्या हमारे जात नहीं, क्या वे हमारे भगवान् नही ? "

" तुम्हारी जात है पर तुम अछूत हो। भगवान् के तुम हो, पर भगवान् तुम्हारे नही। "

नैना कुछ जोर से बोली, " क्यों ? "

" कह तो दिया कि तुम अछूत हो । "

परन्तु मैं तो उनके दर्शन करूँगी, मुझे उनके दर्शन की लगन लग रही है, वे मुझे अवश्य ही दर्शन देंगे ।

" अच्छा अच्छा, सबेरे सबेरे बक बक मत कर, जा यहाँ से । "

अच्छा ! जाती हूँ, कह कर नैना जाने लगी । पुजारी ने चिल्लाकर कहा—" इस मुहल्ले मे फिर कभी न आना । "

नैना ने गंभीर स्वर से कहा—अच्छा. . .. ।

[२]

उस दिन सारे दिन पुजारीजी उदास रहे, स्वयं उनके ही समझ मे न आरहा था कि इस उदासी का क्या कारण है । बार बार वे यही सोचते कि नैना अछूत होकर भी भगवान के दर्शन करना चाहती है और कितने ही हिन्दू ऐसे हैं जो कि पूजापाठ के नाम पर नाक-भौं चढ़ाते हैं, भगवान् की बुराई करते है । फिर सोचने लगे मै बेकार उस बेचारी पर इतना बिगडा मुझे तो चाहिए था कि किसी प्रकार उसे दर्शन करा देता, परन्तु उस समय तो मुझे न जाने कहाँ की मूर्खता सवार थी । अच्छा । अब कभी इधर आवेगी तो किसी भी तरह उसे दर्शन करा दूँगा । वे बार बार पछताने लगे ।

इधर तिरस्कृत की जाने पर नैना के मन में पुजारी के प्रति एक प्रकार का वैमनस्य भाव हो गया । वह बार

बार पुजारी से बदला लेने की सोचने लगी। वह अपनी झाडू को एक हाथ में लटकाए चुपचाप चली जा रही थी। मुहल्ले के आवारा लडके उसकी भाव-भंगी को देख कर चकित थे।

अब नैना शान्त रहने लगी। कहाँ तो इतनी चचल चपल, कहाँ इतनी शान्त। अब जब वह दूसरे मुहल्ले में झाडू देने जाती तो वहाँ जिधर से देखो इस पर दृष्टि पड़ने लगती। नैना घबरा उठी अपने इस नीच स्थिति के जीवन से। रह रह कर उसे पुजारी से बदला लेने की बात खटकती, सोचती आज को अगर मेरे भी मा बाप होते तो कोई मेरे ऊपर दृष्टि न डाल सकता। वह घटों बैठी रोया करती।

एक दिन वह झाडू देती देती एक दुमंजिले मकान के नीचे बैठ गई, और सोचने लगी पुजारीजी के विषय में—। उसे आवाज सुनाई दी। "ए लड़की—"

नैना ने मुडकर देखा कि मकान की सीढी में से एक स्त्री जो कि खूब अच्छे अच्छे गहने, कपडे पहने है उसे पुकार रही है, उसने पूछा क्या कहती हो माजी ?"

यहाँ आ—

नैना उठकर सीढी के पास जाकर खड़ी हो गई और उत्सुक नेत्रों से उस स्त्री की ओर देखने लगी।

स्त्री बोली—"तेरे मा-बाप है ?"

नहीं—

"तू हमारे यहाँ रहेगी ?"

"नहीं माजी"

" क्यों ? "

" मैं अछूत हूँ "

" तो क्या हुआ ? "

" अछूत के लिए कहीं भी स्थान नहीं " नैना की आँखों में आँसू आ गए। "

" परन्तु वहाँ तो है। "

" मैं, मैं नहीं रह सकती। "

" घबराओ नहीं, वहाँ अछूत से घृणा नहीं करते। "

" फिर किससे घृणा करते हैं, माजी। "

" निर्धन से घृणा करते हैं, फिर तू भी तो सुन्दर है, तुझसे क्यों घृणा करेंगे ? "

नैना के चेहरे पर प्रसन्नता नाच उठी।

स्त्री बोली, " इस रूप की हाट में कुछ भी जातिभेद नहीं देखा जाता। यहाँ जिसके पास धन है वही आता है चाहे वह कोई भी हो। "

" अच्छा ", नैना ने आश्चर्यपूर्वक कहा।

स्त्री ने अपना हाथ फैलाया, कहा—आओ। नैना स्त्री को अपना हाथ पकडाकर सीढ़ी चढने लगी, झाड़ू बाहर ही पड़ी रह गई।

[४]

आज गोपालजी का जन्मोत्सव बडे समारोह से मनाया जायगा। सभा की गई, उसमें आज के प्रोग्राम में वेश्या

का नाच भी रखा गया। उस नाच के लिए अभी एक नई ही वेश्या जो कि पन्द्रह बीस दिन हुए ही यहाँ शहर मे आई है वह आवेगी।

रात के आठ बजे होंगे। मदिर के द्वार पर एक डोली आकर रुकी। मदिर भर मे खलबली मच गई कि कृष्णाबाई आगई। कृष्णाबाई पालकी मे से ऊपर से नीचे तक एक चादर मे लिपटी हुई निकली और अपनी साथिन के साथ मदिर मे बिना रोक-टोक के चली गई। अन्दर उनके लिए विशेष इन्तज़ाम था। साथ में आए हुए सारंगिए तथा तबलची भी पास बैठ गए। सारंगी चीखने लगी, तबला फडक उठा। मंदिर भर में सन्नाटा छा गया, सारा मदिर खचाखच भरा था। उस समय ऐसा सन्नाटा हो गया कि अगर सुई भी गिरे तो उसकी आवाज़ सुनाई पड जावे।

उसके साथ की स्त्री ने कृष्णाबाई की चादर उतार ली, उसमें से गहनों की सजी हुई एक सुन्दर सी मूर्ति निकली। साथिन के कहने से कृष्णाबाई ने गाना-नाचना शुरू किया। "मैं तो गिरधर आगे नाचूँगी।"

सारे मनुष्य मनोमुग्ध होकर देखने सुनने लगे। जब नाच-गाना समाप्त हुआ तो कृष्णाबाई एक दम से मूर्छित होकर गोपालजी के आगे गिर पड़ी। उसकी साथिन दौड़ी और उधर से दौडे पुजारी। अन्य सब हक्के-बक्के से होकर इस दृश्य को देखने लगे। उस साथिन ने पुजारी से थोड़ा सा पानी माँगा, पुजारी ने पास रखी गंगाजली में से ही थोड़ा जल दिया। मुँह पर छींटे देने पर कृष्णाबाई ने आँखे

खोलीं। उनकी साथिन पुजारी से बोली, "अभी इस काम मे नई ही है, जरा घबरा गई। पुजारी ने ध्यान से देखा, अरे! यह नैना है—वे जोर से चीख पडे "नैना"।

नैना विस्मृत नेत्रो से पुजारी की ओर देखने लगी। पुजारी बोला—"नैना! तू वेश्या?"

नैना धीरे से उठकर बैठ गई, बोली क्या करूँ पुजारी महाराज, भगवान के दर्शन करने ही थे।

पुजारी के नेत्रों से टपटप आँसू गिरने लगे।

नैना मुसकुराने लगी।

[५]

दूसरे दिन सबेरे पुजारीजी जैसेही मंदिर का फाटक खोलकर बाहर निकले, उन्होंने देखा कि चबूतरे पर कोई पड़ा सो रहा है। पास जाकर देखा, वह नैना थी। वे चीख उठे। आस-पास के कुछ मनुष्य इकट्ठा हो गए। उन्होने देखा कि नैना ने अपने सीने में छुरी भोंक ली है।

धीरे-धीरे करके वहाँ बहुत सी भीड़ इकट्ठी हो गई। कुछ लोगो ने कहा—यह एक वेश्या के यहाँ रहती थी। आज रात को यह उसके यहाँ से भाग आई है और वह बुढ़िया (वेश्या) इसे ढूंढती फिर रही है।

सिवा पुजारीजी के और कोई कुछ भी न समझ सका। पुजारीजी को नैना के हाथ के पास पड़ा हुआ एक कागज का टुकड़ा मिला उसमे टेढ़े-मेढ़े अक्षरों मे लिखा था—

“ मेरी जो अभिलाषा थी वह पूर्ण होगई। अब मैं इस नीच वृत्ति को नहीं करना चाहती, इसलिए गोपालजी के द्वार पर अपना अन्त करती हूं।” —नैना

पुजारीजी के हाथ में से कागज का टुकडा छूट गया और वे नैना के मुँह की ओर टक-टक निहारने लगे। उनकी आँखों से टपाटप आँसू गिर रहे थे।

—सुश्री राजरानीदेवी, भार्गव

जाति-भेद से दूर मानव-हृदय-एकता की सरस कहानी

अमराई

एक पगडंडी—अमराई के हृदय-पथ पर नागिन-सी लेटी ! आमों के सघन वृक्ष आमो से लदे झूम रहे हैं। कहीं कहीं सिंदूरी और पीली सागें तारो-सी चमक चमक उठती हैं। अमराई के बीचो बीच टिन की एक छोटी-सी छाया है जहाँ आस-पास आमों के कई बड़े बड़े ढेर. सागों के भरे टोकरे, एक पत्थर का बना चूल्हा, दो चार मिट्टी की हाँडियाँ आदि पड़े हैं। समीर के हल्के हल्के झोके रह रह कर, आम की एक झुकी हुई, आम्र-भार से नत-सी डाल के सहारे से खडी नूर के बैंगनी सीने दामन से खेलते अमराई की सघनता मे जैसे डूब जाते हैं। नूर सौंदर्य-प्रतिमा-सी अमराई

में दिन-रात किसी स्वच्छंद विचरने वाले पछी-सी, टपके आमों को चुना करती है, रह रह कर पक्षियों को उड़ाने के लिए चिर परिचित कोमल-स्वर अलापती है! निर्निमेष दृष्टि से वह पास में पड़ी, आम के परो को चूमती जा रही पगडडी की ओर देख रही है। लग रहा है जैसे यह जीवन की सुदूरता की ओर सकेत करती है। सहसा उसे 'आधुनिक' झोंपड़ी के पास जूतो की खट-खट सुनाई दी। उसने देखा पलटन का वही सिपाही है, जो हर दिन इसी पगडंडी से राजमहल के पहरे पर जाता है और आधीरात को चुपचाप इसी पगडंडी से शहर जाता है। धीरे-धीरे वह उसके पास गई और बोली—" क्या है ? "

" आम ! " उसने एक इकन्नी बढाते कहा। नूर ने चुन चुन कर छँ. पीले-पीले आम उसकी ओर बढा दिये। आमो को दोनो हाथो मे भर वह बोला " बस छैः ! "

" तो ! " नूर की आँखो मे मुस्कान खेल पड़ी !

माधो जैसे उस मुस्कान से सहम गया। फिर धीरे २ आमों को जेब में डाल वह पगडंडी की ओर चला गया।

× × × ×

अहमद चाचा के लिए खाना ले, जब नूर अमराई में घुसी अंधियारा हो चला था। टिन की छाया में घुस उसने नौकर से पूछा " कोई ग्राहक आया था ! "

" हाँ ! "

" कै आम लिये ? "

" इकन्नी के ! "

इकन्नी नूर की ओर बढाते नौकर बोला " पलटन का सिपाही था माधो ! रोज राजमहल मे पहरा देता है ! "

" कौनसे आम दिये ? "

" सिंदूरी के ! "

" सिंदूरी के आम तो खट्टे है ! "

" उसीने पसंद किये थे ! "

" तुमने मना क्यो नही किया ? "

" हमे तो सभी आम बेचना है बस ! फिर ग्राहक अपनी इच्छा से धोका खाय तो इसमे क्या बात है ! "

" हं ! " नूर टोकरी उठा सागे बिनने चली गई ! " हमे तो सभी आम बेचना है ! और सभी आम जो खट्टे है वे उस पलटन के सिपाही को ही बेचना है—उसके हृदय मे एक द्वंद्व चल रहा था। " पलटन का सिपाही रोज इधर से जाता है। दिल मे सोचेगा कि ये आम बेचने वाले कूँजडे कितने ओछे हैं ? वह खुद इस बात को कभी पसंद नही करती। नौकर मालिक की आज्ञा पालन करता है—बस ! चुपचाप निर्लिप्त-भाव से वह आमों को चुन रही थी।

× × ×

चार दिन से बराबर देख रही है माधो आम नही खरीदता। आज उसने हिम्मत करके कहा।

" आम नहीं खरीदोगे ? "

" ना ! ग्राहक खट्टे आम के पैसे नहीं देता। "

" ग्राहक अपनी मर्जी से खट्टे आमो के पैसे दे तो ? "

" तो वह दूसरे दिन से आम खरीदना बंद कर देता है। "

" तो इसमे गलती किसकी ? "

" जो समझ ले ! " वह कह तो गया फिर चुपचाप नूर के मुख पर खेलते भावो का अध्ययन करने लगा। नूर को लगा जैसे वह पराजित विजेता है—ऐसी विजेता जिसकी पराजय में विजय निहित है और जिसकी विजय में पराजय ! उसने टोकरे से पाँच बड़े बडे आम उठाये और कहा "ये लो!"

" खट्टे तो नहीं हैं। "

" खाकर देखलो ! नौकर खट्टे आम देता है, मालिक नहीं ! "

" मीठे है ! " आम के छिलके को दांतो से छील फेकते उसने कहा।

" तुम्हे विश्वास नहीं था ? "

" तुम्हीं ने तो खाने को कहा था ! "

इसीलिए तो तुमने चख कर देखलिये ! पक्के ग्राहक हो तुम ! हाँ ! " उसके नयन लजा गये कहते कहते। उसके कपोलो पर सामने पड़ी सिंदूरी सागो की छाया पड़ी। उसके अधरो मे मधुर प्रकम्पन होने लगा।

" ये लो ! " इमली उसने देते कहा।

" खट्टे आमों का बदला है, ले जाओ ! "

" मुफ्त में तो मीठे आम ग्राहक रोज खा सकता है !"

नूर केवल हँस पड़ी। उसके हृदय मे प्रपीड़न था। यही आदमी है। कितना बेसमझ है। इसे ही दुनिया चाहती है? झूमती डाली को बाहों मे ले उसने देखा माधो जा रहा था!

+ + +

जमादार ने माधो का पहरा बदल दिया। वह अब राजमहल के बजाय किले का पहरेदार हो गया। नूर रोज बाट जोहती किन्तु माधो नही आया। चौकी पर खड़े माधो कभी सोचता वह अमराई जिंदगी का उपनाम है। खट्टे आम दुःख के फल है, मधुर फल सुख के संकेत है आदमी खट्टे आम के खुशनुमा रंग पर रीझ जाता है। किन्तु अमराई का विश्लेषण करने के लिए दोनों की अनुभूति आवश्यक है और नूर—वह तो अमराई का सत्य है—सौंदर्य!

महिनेभर बाद जमादार ने फिर उसे राजमहल मे बदल दिया। अमराई मे घुसते ही देखा नूर खड़ी है, सामान गाडी पर लद चुका है। एक टोकरी मे सिंदूरी साग पड़ी थी। उसके पास पहुँच वह ठिठक गया, 'आप नहीं खरीदेंगे?'

माधो चुप रहा! गाड़ी से कुछ आगे बढ वह बोली न मेरी शादी हो चुकी है. . . .ये लो और खट्टी साग उसके हाथो थमा वह मुँह को दामन में छुपा जल्दी-जल्दी चली गई! माधो पगडंडी पर खड़ा अमराई में से निकलती नूर को देख रहा था!!!

—विजयकुमार मुंशी

पौर्वात्य अंधविश्वास और आचल श्रद्धा की कहानी
जिसके सत्य में आप विश्वास करें या न करें।

प्रतिशोध

ग्राम के पास से कल-कल करती हुई नदी अपनी सहज मंद गति से बहती रहती थी। ग्राम-वासी उसीका पानी पीते, स्त्री-पुरुष-बालक बड़ी उमंग से उसमें स्नान करते और अहीर लोग उसी में अपनी भैंसों को पानी पिलाकर उस पार की वन-भूमि में चराते रहते थे। यह वन-भूमि बस्ती के ठीक सामने पड़ती थी। इसी में एक शिवालय था। लोग कहते थे कि पुराने समय में एक राजा शंकरजी की मूर्ति को लिये यहाँ से जा रहे थे। सुन्दर वन-भूमि देख वे यहाँ ठहर गये और मूर्ति को उतरवाकर पीपल के पेड़

के नीचे रखवा दिया। दोपहर को जब वे सो रहे थे, तब स्वप्न में महादेवजी ने उनसे कहा कि अब मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा, तुम यहीं मेरा मंदिर बनवा दो। राजा ने महादेवजी की आज्ञानुसार यही मंदिर बनवाकर मूर्ति स्थापित कर दी और यह गाँव भी मंदिर को लगा दिया।

ग्राम-वासियों की महादेवजी के प्रति अखंड श्रद्धा थी। वे उन्हे अपने गांव का रक्षक मानते थे। जब कोई बीमारी या अन्य व्याधि गाँव पर आती तब सब लोग महादेवजी की ही मानता मानते थे। जब वे लोग नहाने जाते तब क्या स्त्री, क्या पुरुष, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बालक, सभी अपने अपने उज्वल लोटों मे स्वच्छ जल भर, गीले वस्त्र पहने हुए उस पार जाते और बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति भाव से उनपर जल और बेल-पत्र चढाकर लौटते थे। इस प्रकार शकरजी के मस्तक पर नित्य-प्रति फूल तथा बेल-पत्रों का एक बडासा ढेर लग जाया करता था। इस ढेर को ग्राम-पुरोहित नित्य सुबह जाकर हटाते और फिर विधि-विधान से शिवजी का पूजन किया करते। मंदिर की पूजा का कार्य उनके वंश मे कई पीढियों से चला आ रहा था और इसीलिए मंदिर की सम्पत्ति उनके वश की सम्पत्ति-सी ही बन गई थी।

सुखचैन गाँव का एक अहीर था। युवावस्था, गठा बदन और स्वभाव से, मनमौजी, "जैसा नाम तैसा गुण" वाली उक्ति उसके लिये सोलह आने मौजूँ थी। वह नित्य-

प्रति अपनी भैंसे लेजाकर वन-भूमि मे चरने को छोड़ देता और आप मदिर के पास वाले बड पर बैठ बाँसुरी बजाया करता था। एक दिन साँझ को जब वह भैंसे लेकर घर लौटा तो देखता क्या है, कि उसका लड़का बलदेव खाट पर पडा है और उसकी स्त्री लडके के सिरहाने बैठी रो रही है। सुखचैन भी घबड़ा गया। सबेरे खेलते छोड़ गया था, इतनी जल्दी क्या हो गया? पास जाकर देखा तो जोरो का बुखार चढ़ा हुआ था। गाँव मे जाकर वह वैद्य को ले आया। वैद्य दवा देकर चला गया। दोनो स्त्री-पुरुष सारी रात बच्चे के सिरहाने ही बैठे रहे। सवेरा हुआ पर लड़के ने आँख न खोली। सुखचैन ने भैसो को बिना दुहे ही खोल दिया, उनके बच्चे अपनी-अपनी माँ के साथ ही चले गये। आज उनको किसी ने भी न रोका। घर में उस दिन चूल्हा न जला। दोनो वैसे ही बैठे बच्चे का मुँह ताकते रहे।

लोगो ने बताया, महादेवजी को रोज जल चढाओ और सोमवार को उपवास रखो। अब सुखचैन प्रतिदिन गीला कपड़ा पहन, जल, बेलपत्र तथा पुष्प लकर महादेवजी की पूजा करने जाता, उनके सामने मस्तक टेककर अपने बालक के आरोग्य-लाभ की प्रार्थना करता और इधर उसकी स्त्री प्रति सोमवार को महादेवजी का व्रत रखती। इस तरह अठारह दिन निकल गये, पर बलदेव को कुछ लाभ प्रतीत न हुआ। दिन पर दिन उसकी अवस्था गिरती ही जा रही थी। अंत मे इक्कीसवे रोज वह इस संसार से चल बसा।

इस घटना से सुखचैन को भारी धक्का लगा, उसका दिल बैठ गया पुत्र के साथ ही उसके सुख और चैन दोनो छिन गये। अब न तो उसे किसी ने भैंसें दुहते देखा और न बाँसुरी बजाते। हाँ, महादेव के मंदिर मे अब भी वह नित्य प्रति जाता था। पर अब उसके हाथ मे जल, पुष्प या बेलपत्र नजर न आते थे, वरन् नजर आता था एक मोटा काला लट्ठ। बालक के आरोग्य-लाभ की कामना ने अब प्रतिशोध की प्रचड अग्नि का रूप धारण कर लिया था, जिसमे सुखचैन के तन और मन दोनों जले जा रहे थ। उसका दृढ विश्वास था कि महादेवजी ने उसके साथ न्याय नहीं किया। अब वह महादेवजी के सामने मस्तक नवाकर घंटो नही खडा रहता; प्रत्युत दो लट्ठ उसके सिर पर कसकर जमाता और गालियाँ देता हुआ चल देता था। प्रहारो के साथ खट्ट की आवाज होती, जिसकी प्रतिध्वनि शून्य मंदिर मे गूँज उठती थी। यही मानों सुखचैन के विजय का घोष था।

गर्मी निकल गई, बादलो की विजयवाहिनी सेना से आकाश घिर गया, चारों ओर भूधराकार मेघ-खड नजर आने लगे और होने लगी मूसलधार वर्षा। मेघो के जयघोष को सुनत ही वनभूमि के मयूर पूंछ उठा-उठाकर नाचने लगें। नदी की जिस रेत मे बालक खेला करते, युवक चांदनी रातो मे बैठकर बांसुरी बजाते, वह जल से ढँक गई। अब नदी मे वह सौम्यता नजर न आती थी, किन्तु दिखता

था मस्तानापन और गर्व से उन्नत ललाट । धीरे-धीरे नदी का नहाना बंद होगया और साथ ही बंद होगया महादेवजी पर जल चढाना । अब केवल पुरोहितजी ही ऐसे थे जो नित्य नियम से नाव मे बेल-पत्र, पुष्प, चदन, नैवेद्य, आदि रख, उस पार शकरजी की पूजा को जाते थे ।

श्रावण की पूर्णिमा थी, रक्षाबंधन का पवित्र पर्व था । प्रात.काल होते ही लोगो ने देखा कि उनकी उस छोटी सी नदी का रूप विकरालता की पराकाष्ठा को पहुँचने की कोशिश कर रहा है । उत्तुग लहरो की चपेट मे दोनों किनारे न जाने कहाँ छिपे पडे थे, चारो ओर दूर दूर तक जल ही जल नजर आ रहा था । उस धूमिल जलराशि के गर्भ मे छिपे हुए कुछ एक उन्नत पेडो के शिरोभाग किसी पत्ती बाजार में रखे हुए पत्ती के ढेरो से प्रतीत हो रहे थे । गाव के छोटे-बडे सभी आज इस विशाल पूर के दर्शनो को उपस्थित थे । युवक कहते हमने ऐसा पूर नही देखा, वृद्ध कहते जब हम छोटे-छोटे थे तब एक बार ऐसा ही पूर आया था । किनारे से बीस-पच्चीस गज की दूरी से ही अच्छे अच्छे शहतीर निकलते जा रहे थे, पर उन्हें पकड़ सकने की किसी को हिम्मत न होती । केवल 'वह गया, वह गया' ही मुँह पर रह जाता था और हृदयो मे रह जाता था उत्सुकता एव असमर्थता का द्वन्द । इसी समय ग्राम-पुरोहित ने आकर 'गगा मैया की जय' कहकर नदी का स्वागत किया और एक हाथ पूर ने आगे बढ़कर मानो उनके जयघोष का

प्रत्युत्तर दिया। पुरोहितजीने महादेवजी को 'लक्ष्य' कर जल फेका, चदन छिटका, फिर 'समर्पयामि कहकर बेलपत्र और पुष्पो को ले धार मे छोड़ दिया। वे सब उस विशाल प्रवाह मे अन्य पदार्थों की भांतिही वह चले। उसमे से महादेवजी ने क्या ग्रहण किया, क्या नहीं, यह कौन पूछे! धर्म के नाम पर किये जाने वाले किसी कार्य की आलोचना कर नरक मे जाने का डर उस समय तक शायद सर्व-साधारण के मनो से पूरी तरह न निकल पाया हो और फिर ईश्वर के स्थान मे मूर्ति और मूर्ति के अभाव में सुपारी की पूजा स्वीकार करते आने से मन मे शंका उठने की प्रवृत्ति प्राय. दब-सी ही चुकी थी। किन्तु व्यङ्ग मानव-स्वभाव की अपनी एक खास चीज है। पुरोहितजी अब अपने धार्मिक कृत्य से मुक्त अन्य लोगों के ही समान पूर देखने मे सलग्न होगये तब किसी मनचले के मुँह से यह निकल ही पड़ा "आज पुरोहितजी नाव मे बैठकर उस पार जाते; तब थी सच्ची परीक्षा।" "पाँयलागों" की ध्वनि को ग्रहण करने के अभ्यस्त कर्ण-कुहर इस व्यङ्ग को सहन न कर सके। पुरोहितजी का मुंह लाल होगया। एकदम परशुरामी स्वर में बोले—"यहाँ हमारे सामने आवे, कौन क्या कहता है?" पुरोहितजी का गाँव पर असाधारण प्रभाव था। उनके शब्द धर्म और न्याय दोनों दृष्टियों से कानून माने जाते थे। भीड मे लोग एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे, जैसे कोई अवांछनीय घटना घटने पर हो। कुछ जो वयोवृद्ध थे, पुरोहितजी के समीप

जाकर उनकी कोपाग्नि को शांत करने के प्रयास में लग पड़े। इसी समय उस विशाल जलराशि में किनारे के पास ही जोर से "छप्" की आवाज हुई, लोगों का ध्यान सहसा उसी ओर आकृष्ट होगया। सबने देखा एक व्यक्ति उन प्रलयकारी लहरों द्वारा तीव्र गति से ले जाया जा रहा है। लोग उसे पहचान न सके, पर उसकी पीठ पर बंधा हुआ कालालट्ठ किसी की भी दृष्टि से छिप न सका।

—रामनाथ शुक्ल 'साहित्य-रत्न'

तारुण्य जनित भावुकता की मार्मिक कहानी—

पाप की प्यास

२ अगस्त

ब्याह के बंधनों में मेरे साथ बँधी हुई,

बड़ा आश्चर्य होगा आज इस तरह का संबोधन पा, पर उन रोज रोज की "प्यारी" में कुछ भी अर्थ नही रहा।

तुम्हे नाज़ होगा कि दिलीप तुम्हारे प्रति कितना सच्चा रहा है। पर नही, मैने तुम्हे धोखा दिया। किसी बात को छिपाने के इरादे से नही, पर केवल इसी लिये कि मै स्वयं भी उसे भूल जाना चाहता था।

ब्याह के पहिले की बात—मेरी उससे पहिचान थी, नाम मात्र की पहिचान। केवल दुआ-सलाम की पहिचान ही समझो, और कॉलेज मे हम न एक दूसरे से बात करते थे और न मिलते ही थे। नाम न बताऊँगा, बताने से फायदा ही नहीं। आज उसका नाम वह न रहा। पहिचान इस प्रकार हुई—हमारे दोनो के कुटुम्ब में बहुत मेल था, पर वह मेल केवल बडो तक ही रहकर खतम हो गया था। छोटो में केवल पहचान मात्र ही थी। वह रूपवती थी। कैसा रूप? वह भयानक वासना युक्त नही—बडा अजीब सा। कोई कोई तो उसे रूपवती ही न मानें। राजयक्ष्मा के रोगी के सदृश शरीर—दुर्बल, जिस पर बहुधा नीले रंग की साड़ी, हाथ मे सोने की दो-एक चूड़ियाँ और उसके ऊपर दुर्बल-सा मुख चमकती हुई ऑखें-बडी बडी, और बडी भौहनियाँ, दबे हुए से गाल और एक ऊँची लम्बी नाक—वैसी जैसी ग्रीक लोगो को प्रिय थो। खूबसूरती को किस प्रकार बताऊँ, पर वह न जाने क्यो गुड़िया सी उस लम्बे से चहरे और रूखे बिखरे से बालो को, घुँघराले बालो को लिये अजीब तरह से सुन्दर मालूम होती थी। और सबसे ज्यादह उस समय खूबसूरत मालूम पड़ती थी जब कि उसका Profile ही दिखाई देता था। उस समय उसकी शानदार नासिका ग्रीक मूर्तियो की याद दिला देती थी। मुझ पर उसके रूप का बहुत प्रभाव पडा था। मैं, जिस समय उसे देखने का मौका

होता, उसे देखने मे न चूकता था। यह पूरी तौर से नहीं कह सकता कि कभी भी वासना की भावना मेरे मन में उसके लिये न आई होगी—जरूर आई होगी, पर ज्यादहतर वह मन मे न रहती थी। फिर उसकी बोली—मीठी सुरीली पतली आवाज—कभी कभी मैं उसे सुन कर सोचता कि यह अवश्य गाना अच्छा जानती होगी। उसकी बोली में मधुर लालित्य था, एक लचक थी, एक मीठापन।

पता नहीं किस प्रकार उसे मेरे मन के भाव पता चल गये। एक बार जब वह हमारे यहाँ आई—उस समय ज्ञात नहीं कौन बीमार था, मुझे याद नही आरहा—तब मोटर मे उतरते ही मुझे उसने हाथ जोडे। मैं अकेला ही वहाँ खडा था। मैंने शेक हैण्ड के लिये अपना हाथ बढा दिया। वह थोडा झिझकी—क्यों झिझकी, उसे तो ज्यादहतर हाथ मिलाने की ही आदत थी—पर वह झिझकी और फिर आगे हाथ बढ़ा दिया। उसने न हाथ पकडा न हिलाया ही। एक गरम लकडी सा हाथ मेरे हाथ मे आगया, और मिलाने के दूसरे ही क्षण मे मैं भागकर कमरे के अन्दर।

आज मैं सब सामने रख देना चाहता हूँ। किसी भी बात को छिपाना नही चाहता। इस भीगी अँधेरी रात मे मेरे पुराने जीवन की ये मूक कथायें खूब घूम जायें—चली जावें दूर दूर तक—जिससे मुझे बाद को

शर्माने का मौका न मिले। उस रोज रात को सोचा, कवि की उस पक्ति पर सोचा—"प्रिये, प्राणो की प्राण!" और हर समय जो एक धुंधला सा Out of focus मुख दिखता था—पहिचाना हुआ फिर भी अनजान—उसी जगह मुझे उसी का मुख दिखाई दिया। स्पष्ट दिखी उसकी बिखरी अलके, उसके रूखे से बाल, उसकी वह शानदार लम्बी नाक, और नीचे खुले हुए अधर। मै आगे को झुका, और झुका—और फिर धम्म से पलग के नीचे गिर पडा।

इतनी सी भूमिका है उस कथा की। मुझे प्रतीत होता है, एक युग सा व्यतीत होगया उसका ब्याह हुए। और ब्याह के बाद उसने मुझे बुलाया, अकेले लेजाकर अपनी अध भीगी पलके ऊपर उठाकर मुझसे कहा—"अच्छा, अब मै चली। सुखी रहना।"

मुझे कुछ भी समझ मे न आया। क्या मतलब था, और फिर अकेले बुलाकर? मैं मुसकरा दिया और पूछा—"क्यों दूल्हा पसंद आया?"

उसकी आँखें चमक गईं—"वाह! नहीं तो मैं ब्याह ही क्यो करती!!" और वह शर्माई-सी हुई भाग गई। मेरी यह आखरी मुलाखात थी।

तुम पूछोगी कि आज मैं यह सब क्यों लिख रहा हूँ? कारण है। शायद इसीलिये कि दिल हलका

हो जाय, आज जो भावों का बवन्डरसा इस दिल मे उमड़ रहा है वह कुछ कम हो जाय—या शायद इसलिये कि ‘ अच्छा हूँ, सच्चा हूँ ’ इस तरह के पुजयाने के हक से दूर हो जाऊँ, तुम मुझे इस प्रकार न मानो । आज वर्षों बाद फिर स्मृति जागृत हो उठी है । वह दूर के केवल आकार के सदृश दिखते हुए काले झाड़ों में से होकर यह स्मृति आरही है—और आ रही है धीमी फुहार की आवाज । मेरा व्यभिचारी दिल एक बार फिर से उन मन ही मन किये हुए मूक प्रणय की कथा में Revel करना चाहता है ।

राधा जब भीगी-भीगी बरसात में रो देती थी, व्याकुल हो जाती थी, उस समय पढ मुझे हँसी आती थी । आज शान्त प्रकृति, इस फुहार और हिलते हुए चीकू के झाडों को देखकर पुरानी स्मृति ने न जाने कैसे इतना विकास पालिया है । आज शरीर भी कुछ माँगता है, रोम-रोम खडा हो गया है । इस तुम्हारे ही कमरे मे तुम्हारे लिये भूखी पुकार है । और उस पुकार के साथ वह बीती हुई—गडी हुई, जिसपर घास फूल पत्ती सब उग गये थे—वह स्मृति जमीन को फोडकर उठ खडी हुई है ।

तुम्हे मै यह सब इसलिये नही लिख रहा हूँ कि तुम मानो कि मैं तुम्हारे प्रति सच्चा न रहा । इस बीते युग की स्मृति के सत्य पर, इसकी भावना पर अटल विश्वास होते हुए भी, इस बात को ध्यान में रखते

हुए भी कि शायद अगर वह आज तुम्हारा आसन ग्रहण कर लेती तो मुझे खेद या चिन्ता कुछ न होती—हाँ, शायद मैं उसके प्रति कभी कभी सच्चा न रह सकता, शब्द के किसी भी अर्थ में नहीं—इन सब को स्वीकार करते हुए भी मैं कह सकता हूँ कि जितना सम्भव है मैं तुम्हारे प्रति सच्चा रहा हूँ, नही बल्कि सम्भव से भी ज्यादह। और उस समय भी मैं तुम्हारे प्रति सच्चा रहा जब कि "घूमने चलो" का न जाने क्या अर्थ लेकर उस ताँगे वाले ने उस मकान के सामने खडा कर दिया था। छोटी-सी गली—बरसात से भीगी हुई, कीचड से सनी—जिसके एक कोने पर उस गन्दे से वातावरण मे अजीब-सी दिखने वाली एक शानदार पीली मोटर। मैं हडबड़ा-सा गया। भावों के आवेग में जैसे कोई एक जोर का धक्का लग गया हो।

"क्या क्या. आ.. ?"

"बाबूजी, सबमे खूबसूरत. . . ।"

और ऊपर से एक पासवाले मकान में से आती हुई छम् छम् की आवाज ने सब स्पष्ट कर दिया। आज गर्त में उतरना था। इस जगह तक पहुँचकर लौटना कायरता थी। ताँगे के छडो को जोर से पकड़ कर मैंने एक रुपया उसके हाथ में फेंक दिया, और फिर धीरे से उतर गया। तुम सोचोगी मेरा पतन हो गया। इसके सिवाय तुम सोचही क्या सकती हो। इसी तरह सोचो। मेरा पतन हुआ या मैं जन्म से ही नीच था, इसमे पता नही कौनसी बात सत्य

है। बिना पारू का देवदास ! है ना आश्चर्य की बात !!

मैं अन्दर गया और उस घूमती हुई सीढ़ी से ऊपर। पता नही कितने और भी इसी तरह धड़कते दिल से या अधिकार की भावना मन मे लिये अपनी वासना तृप्त करने ऊपर जा चुके है। जब सब सो जाते है, शान्ति छा जाती है, तब यह दुकान लगती है। एक जगह पाँव ठक से टकराया। देखा उस लकडी की सीढी का एक पाया टूटा था। बिलकुल निकल नही गया था, पर वह ऊपर कुछ उठा हुआ था। और फिर ऊपर देखा—उस आधे से अँधियारे में, कमरे की जलती रोशनी के प्रकाश मे वह काली-सी चौखट और सीढ़ी के ऊपर, ऊपर उठे हुए अँगुठे के समान उपहास-सा करता, रोकता हुआ, साथ मे चुनौती-सा देता हुआ लकडी का हत्था था। और उसी जगह प्रतीत हुआ, तुम खडी हो, अपनी रेशमी साड़ी को समेटती हुई मुझे रोक रही हो। भला क्यों रुकूँ मैं ? ब्याह के माने यह तो नहीं कि इस जगह आ बेवकूफ बनकर लौट जाऊँ ? मैं नही रुकूँगा। अगर यह पतन है, तो मुझे इस पतन मे कोई खराबी नही दिखती। फिर ऊपर बढा। कमरे में से अजीबसी आवाज आ रही थी—खच्, खच्, खच्, खट्। जमे हुए पाँवों से कमरे मे घुस गया। विशाल शानदार सजा, बेतरह फर्नीचर, कुर्सी-टेबल, गद्दा-तकिया और न जाने क्या क्या फालतू चीजों से भरा कमरा—बीच मे जरासी खुली जगह और वहाँ एक लाल, गहरे लाल रंग

का बेलबूटेदार गलीचा, जिसके एक कोने पर पान से लाल दाँत किये एक अधेड औरत—बेतरह मोटी, आँखें गड्ढे में घुसी हुई, बड़ासा नथ पहने, अपने अंगूठियों से भर हाथ से सरोते से सुपारी काट रही थी—खच्, खच्, खच्, खट्।

“बैठो ना बाबू।” उसने अपने सरोते वाले हाथ से न जाने कहाँ इशारा करते हुए कहा, और फिर पान को एक तरफ मुँह में लेकर गाल पर अजीबसा भद्दा उठाव लाते हुए पुकारा—“अरे ओ रमा, रमा सुनतो! बाबूजी आए हैं।” जब कुछ जवाब न मिला तो—“अभी भेजा, आप बैठिये ना।” कहती हुई झमक से उठ छम् छम् करती हुई बाँये हाथ के दरवाजे से चली गई। अन्दर मैंने उसे पुकारते सुना—“रमा   अरे कहाँ है निगोड़ी?”

कई बार सोचा था कि ऐसी जगह न आऊंगा, नही ऐसी कोई परिस्थिति ही नहीं हो सकती जो कि मुझे यहाँ ला दे; पर आही पहुँचा, और उस समय मेरे मन में क्या भाव था, कुछ औत्सुक्य या घबराहट कुछ भी पता नही—पर रह-रह कर खयाल आजाता था कि कितनी खूबसूरत वह होगी, क्या उसका गोल चेहरा है अथवा लम्बा, और इस सब के ऊपर बार-बार—वह कितनी खूबसूरत होगी? अभी तक मैंने उसे देखा न था, पर फिर भी न जाने कैसे मैंने यह दृढ निश्चय बना लिया कि वह खूबसूरत है।

बाँये हाथ के दरवाजे के पास थप् थप् पॉव की ध्वनि आई, जैसे कोई चप्पल पहिने बडी लापरवाही से चल रही हो, पॉव फेंक रही हो। फिर पीली साड़ी का, खूब गोटे और न जाने क्या क्या से भरा पल्ला दीख पडा, पल्लेवाली आगे बढी, पर फिर एकदम रुककर कार्निस पर झुककर अन्दर चौक मे पुकारा—" अरे मेहदी की बच्ची, आज बेला के यहाँ के पान न लाई ? " (अन्दर मे न जाने क्या गुनगुनाहट आई) माँ पान बना रही थी तो क्या ! मैं तो बेला के यहीं के खाती हूँ। गधी कही की ! जा अभी दौडकर जा, आगे से हुआ तो . . ।" और जब य बाते हो रही थीं तब उस पतले-से शरीरवाली सुन्दरी को मैने देखा। उसका एक पतली चूडी लिये कोमल गोरा-सा हाथ, दुबला, लकडी के कोने पर टिका था, उस पीछे के धुँधले गहरे-से वातावरण के बीच साफ सीधी मधुर लाईनो से बना हुआ जिनमे वही सुन्दरता, मादकता थी जो कि कनु देसाई के रेखा-चित्रो मे होती है। हाथ और पीठ के कुछ हिस्से के सिवाय मुझे कुछ न दिख रहा था, पर वही उसकी सुन्दरता का परिचय देने के लिए काफी था। पतली-सी उस साड़ी मे से व काले घने बाल साफ दिख रहे थे, और एक मोटी-सी चोटी जो कि उस स्थान से बहुत आगे निकल गई थी, जहाँ कि उसकी साड़ी अपने आप आकर सिमिट गई थी।

फिर एकदम उसने घूमकर चेहरा

मेरी ओर किया। ओह यह क्या !! . . .: वह वही थी। मेरे कॉलेज के जीवन की मूक प्रणय और स्वप्नो की पात्री जो कि एक गए हुए, बीते हुए विचार के समान मेरे जीवन में से हट गई थी, न जाने कितनी असंख्य स्मृतियो के नीचे दब गई थी। वही आज इस रूप में.. .. ... !

जड़वत् दोनो खड़े रह गए—वह उसी तरह एक पैर देहली के अन्दर रखे विस्मय से स्थिर। बड़ी देर बाद न जाने कितनी रुकावटो को फोड़ती हुई मेरे गले में से आवाज़ निकली—"अरे तुम !"

वह जमे पैरो आगे बढ़ी, और फिर मेरे पास आकर स्थिर शब्दों में बोल उठी—"हाँ, मैं! पर तुम आओगे कभी न सोचा था। समझती थी कि मेरे में जो पवित्रता है वह तुम्हारी स्मृति के साथ उस नथुनी की तरह इस जीवन से अलग कर दी है, जिसे फिर मैं नहीं पा सकती। पर कितनी भूली थी मैं! मैं न जानती थी तुम्हारे जैसे छिप-छिपकर आनेवाले नीचों ने ही यह नरक की बस्ती आबाद कर रखी है। जी चाहता है बाहर एक सरौता लटका दूँ ऐसों के लिए, नाक काट-काटकर आयें तो........"

वह आवेग में काँपी नहीं। उसके कपोल आँखों के पास खिंच आये थे, और नेत्रों में नील-वर्ण मेघों की तरह घृणा एकत्रित हो गई थी। कक्ष में से

निकलती हुई-सी आवाज़ मे वह बोल उठी--" खर, आओ........ यह भी सही। "

मैं और न रुक सका। मेरा पैर उस टूटी सीढ़ी से इस प्रकार टकराया कि गिरते-गिरते बचा। बाहर निकल आया। नीचे सुनसान सड़क और तारों वाली रात।

बस अब और नहीं—

—दिलीप

—श्री राजेन्द्रकुमार

रचनाकाल—४ अक्तूबर १९४१

पतिदेव ! प्राणनाथ !!

" पतिदेव ! प्राणनाथ !! "

उषा के होंठ हिले—और सहसा उसके मुख से निकल पडे। उसके नेत्रो में चिन्ता थी, घृणा थी, लज्जा थी, दुख था, कुतूहल था, और था पति का किया हुआ महान त्याग !

उषा मुख से कुछ नहीं कहती, किन्तु उसके हृदय के भाव सदा उसके मुख पर अंकित रहते थे, और जरासा प्रयत्न करने पर कोई भी उन्हें सरलता से पढ़ सकता था। परन्तु विश्व को इतना अवकाश कहाँ ? वह सदा अपने राग रंग में मस्त रहता है, दुखियो का दुख बढाना, बलवानो को बल देना, पराधीनों पर हँसना और पतितों को दबाना ही वह अपना कर्तव्य समझता है।

ऐसे ही विचित्र संसार की उषा प्रकाश में परिणत होने के पूर्व ही एकाएक व्याकुल होकर पुकार उठी—

"पतिदेव ! प्राणनाथ !!"

सतीशबाबू अचानक उठ बैठे—और दूसरे ही क्षण तो वे उषा के पलंग के पास थे। उन्होंने देखा उनकी उषा प्रकाशमय होने के पूर्व ही प्रकाशहीन होने वाली है, दिवस के पूर्व ही रात्रि का आगमन होने वाला है, कली खिलने के पूर्व ही मुरझाजाने वाली है, सरिता सागर से मिलने के पूर्व ही अपना अस्तित्व बालू एवं पत्थरों में खो देने को उद्यत है। उनका हृदय रो पड़ा, नेत्रों में अश्रु जारी थे, मुख से कुछ न कहने पर भी उनके दुख का अनुभव उषा बराबर कर रही थी। सतीशबाबू को यह ज्ञात था—कि उषा के हृदय मे उनके प्रति कितना मान है, कितना आदर है, कितना सत्कार है और कितना प्रेम है।

वैसे तो उषा आज लगभग तीन मास से रोग शैया पर है, वह एक के बाद दूसरी बीमारी की शिकार होती जा रही है, पहले केवल सिर की पीड़ा, फिर ज्वर और आज टॉयफायड—और उसके बाद—? सतीशबाबू निरन्तर रोगी की सेवा मे लगे रहते हैं, गत दो तीन दिवसों से उषा की कुछ अधिक दशा बिगड़ने पर उन्होने रात दिन एक कर दिया और अब कुछ विश्राम करने की इच्छा से उषा के पास ही जरा लेट गये थे, कि उसी समय उनके कानों में क्षीण ध्वनि आई—

"पतिदेव ! प्राणनाथ !!"

सतीशबाबू को बड़ा खेद हो रहा था—वे जानते थे कि क्या होने वाला है—उषा की दशा बराबर गिर रही है—ऐसे समय में उन्हें विश्राम ? जब कि वे जानते हैं कि उनकी उषा अन्तिम विश्राम की तैयारी कर रही है—फिर भी विश्राम ? डाक्टर सदा पिचकारी देने को कहते है—सतीशबाबू शान्त—उनके हृदय मे तो कोई कह रहा है, उषा नही बच सकती। तब वे उसकी आत्मा को जरासा भी कष्ट देना ठीक नहीं समझते, अतः वे शान्त हैं।

उसी समय उषा कहती—

"डाक्टर बाबू—आशा के विरुद्ध आशा करना भी एक पागलपन है—मैं जानती हूँ कि मेरा बचना असम्भव है—भगवान मुझे अपने पास बुलाना चाहते है।"

यह सब दृश्य ज्यों का त्यों एक बार सतीश के मस्तिष्क में घूम गया—और सहसा किसीने मानो उनसे पूछा फिर भी विश्राम—?

सतीशबाबू के हृदय में दुःख था, ग्लानि थी, क्षोभ था, वे पागल से चिल्ला पडे—

"उषा ! उषा !! मेरी रानी !!!"

उषा सतीश की ओर एक टक देख रही थी, सतीशबाबू उसके मूक निवेदन को समझते थे। उषा अपने भाई प्रकाश के दर्शन करके अपनी जीवन यात्रा समाप्त करना चाहती थी और इसी को लेकर उसने पतिदेव से बड़ा हठ किया था, पतिदेव ने भी कई पत्र एवं तार प्रकाश को दे दिये थे, परन्तु वह नहीं आया—न जाने क्यों ?

सतीश उषा के अंगारमय हाथ अपने हाथ में लिये उसके पलंग पर बैठे हुए हैं—उनकी दृष्टि उषा के नेत्रों पर जमी हुई है और वह भी एक टक उनके नेत्रों में देख रही है। जिनका प्रथम परिचय आज से लगभग सात वर्ष पूर्व हुआ था और समय ने उन नेत्रों मे उषा को सब कुछ दिखा दिया था—उसके सुख दुख, उनमें हँसे और रोये थ—आज भी वह उन्हे देख रही है और इसलिये देख रही है कि सम्भवतः फिर कभो नहीं देखपाय। इसीलिये वह उन नेत्रो को अपने नेत्रों से ओझल नहीं होने देना चाहती।

उधर सतीश उषा के नेत्रों में सब कुछ देख रहा है। उषा को अपने गत जीवन के चित्र एक के बाद एक दिखाई पड़ रहे है।

ऐसा ज्ञात होता है कि किसी अलौकिक शक्ति ने सतीश और उषा के मस्तिष्क का संबंध बेतार के तार द्वारा जोड़ दिया है, और इसीलिये उषा जिन चित्रों को देख रही है, वेही सतीश को भी समय के चित्रपट पर दिखाई पड़ रहे हैं। कभी कभी उषा के अधर हिलते, और मानों सतीश को उसके गत जीवन के कुछ स्वप्नो की एक आशा स्पष्ट तया दिखाई पड़ जाती। इस समय उन दोनो को अपने गत जीवन के अध्याय ऐसे दिखाई पड़ रहे हैं जिस प्रकार से विद्युत की चमक मे एक मार्ग से भटकते हुए यात्री को मार्ग दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार से बहुत सा समय व्यतीत हो गया, जिसका उन्हे कुछ भी भान नहीं और वे अपने जीवन पर विचार करने में मग्न हैं। उस जीवन पर

जो चला गया—उस जीवन पर जो है और उस जीवन पर जो होगा अथवा नहीं—?

सतीश का विवाह हुआ, उषा से, पिता की इच्छा के विरुद्ध, माता की इच्छा के विरुद्ध, समाज की इच्छा के विरुद्ध। उनके लिये प्रसन्नता थी, विश्व का सुख उनके लिये था, उन्होंने अपने जीवन में एक बड़ी विजय प्राप्त की थी।

समय की गति का सामना न सन्तोषकुमार—सतीश के पिता कर सके और न—डाक्टर-उषा के पिता—दोनो ही काल के ग्रास हो गये। और प्रकाश [उषा का भाई] उषा एवं सतीश अपने स्वतंत्र विचारों द्वारा देश, एवं समाज को स्वतंत्र करने के लिये पूर्ण स्वतंत्र हो गये। अपने कार्यक्रम के अनुसार वे बराबर अपने मार्ग पर अग्रसर होते रहे। इस बीच में उन्हें कई बार कृष्ण-मंदिर में पूजा के निमित्त भी जाना पड़ा, और वे भी प्रसन्नता से गये।

समाज के कर्णधारों की दृष्टि में वे काटे के समान चुभते थे, क्योंकि उनकी अब युवक समाज बिल्कुल चिन्ता नहीं करता था-उनके शास्त्र अब किसी काम के नहीं रह गये थे-पहले तो जाति बहिष्कार का अर्थ बिल्कुल मरजाना होता था परन्तु अब नहीं, अब तो मुक्ति प्राप्त करना रह गया—और समाज भी तो अपने ध्येय से बिल्कुल विचलित हो गया।

प्रकाश आज कृष्ण-मंदिर में है, अपनी पूजा में मग्न, अपने मार्ग पर, अपने विचारों में। बाहर के समाचार उन्हें

सतीश एवं उषा के पत्रों द्वारा ज्ञात हो जाते हैं और वे भी अपने विचार कभी-कभी बाहर तक पहुँचा देते है।

यहीं पर उन्हें उषा की बिमारी का ज्ञान हुआ—और शनैः-शनैः उसकी बीमारी किस प्रकार बढती गई, यह भी वे जानते हैं, वे उस से मिलने के लिये बहुत व्याकुल हैं, जेलर को समझाते है, निवेदन करते है। जेलर को उनसे पूर्ण सहानुभूति है परन्तु वह अपने कर्तव्य का दास है।

वहाँ उषा अपना समय कठिनाई से बिता रही है, उसका अब एक-एक क्षण बडी कठिनाई से व्यतीत हो रहा है। वह यमराज से इस बात के लिये मानो झगड रही है कि वह भाई के दर्शनों के पूर्व इस विश्व को नहीं छोड सकती।

सतत् प्रयत्न द्वारा प्रकाश को एक सप्ताह का अवकाश मिला, और वे अब बहन से भेट करने कारागार से चल दिये। खुफिया पुलिस साथ थी—आज्ञानुसार—परन्तु प्रकाश का जीवन प्रकाशित था—वह वहाँ से सीधे स्टेशन गये—गाडी मिली नहीं और वह अब एक क्षण भी यहाँ व्यतीत नहीं किया चाहते थे, परन्तु वे धन हीन, अपरिचित नगर मे, दूसरे साधन नहीं, बहन से मिलना अवश्य, अतः वह पैदल ही चल दिये संध्या के समय—रात्रि भर वह अपनी यात्रा पर—

उषा अपनी यात्रा की तैयारी मे—

प्रकाश थक गये—चलते-चलते—परन्तु विश्राम के लिये उनके पास समय कहाँ—वह अपनी बहन से मिलने

जा रहे है, उस बहन से जो यमराज से भी उनसे मिलने को झगडा कर रही है—वह भारतीय ललना धन्य ! उन्हे स्थान नहीं, समय नही, अवकाश नही वे बढे चले जा रहे है, अपने पथ पर, अपनी बहन से भेट करने, उससे अन्तिम विदा लेने। पुलिस के सिपाही भी तंग है, थक कर चूर हो रहे हैं, वे सोच रहे हैं कि यह क्या मनुष्य हो सकता है, जिस को जरा सी भी थकावट नहीं, क्षणिक विश्राम की इच्छा नही और अपने रास्ते पर दौडा चला जा रहा है—नादान सिपाही क्या जाने कि प्रकाश के हृदय में अनन्त प्रकाश है। उन का जीवन ही विश्व को प्रकाशित करने को हुआ है। और वे अपने पथ पर है।

उषा अपनी तैयारी के बाद जब विचारती है कि कुछ भूली तो नहीं, उसी समय उसे भाई प्रकाश का स्मरण हो आता है, शनैः २ अब उसकी स्मरण शक्ति मंद पडती जारही है, परन्तु स्मरण आते ही उसके अधर हिलते हैं और सतीश के कानों को सुनाई पडता है—

“ पतिदेव ! प्राणनाथ !! ”

उसकी दृष्टि दरवाजे पर जमी हुई है और सतीश की उषा के मुख पर।

प्रकाश प्रति पल, प्रति क्षण, अपने पथ पर अग्रसर हो रहा है।

उषा अपनी यात्रा की पूर्ण तैयारी कर चुकी है। सतीश अपने भाग्य का निबटारा कर रहे हैं।

बाट देखते देखते भयंकर रात्रि समाप्त हो गई, प्रातःकाल

हुआ, पूर्व दिशा लाल हो गई–उषाकाल आया और चला गया–परन्तु प्रकाश ! हाँ सूर्य भगवान ने संसार को अपने अनन्त प्रकाश से प्रकाशित कर दिया, परन्तु उषा के हृदय मे अंधकार ज्यों का त्यो है, फिर भी उषा को विश्वास है। आशा की क्षीण रेखा उस अंधकार मे चमक रही है और उषा की दृष्टि दर्वाजे पर, एक टक, निस्तब्ध !

सतीश के मस्तिष्क के भाव इस प्रकार उलझे पडे है कि उनको सुलझाना एक मनो-वैज्ञानिक के लिये भी कठिन ही नहीं पर असम्भव-सा है। वे अपने ज्ञान नेत्रो से जीवन के अंधकारमय भविष्य को देख रहे है और उसमे से कुछ पा जाना चाहते हैं परन्तु उन्हे कोई वस्तु स्पष्टतया दिखाई नहीं पढ रही है, उन्हे दुख हो रहा है, और रह रह कर प्रकाश का स्मरण हो आता है—परन्तु प्रकाश—?

हाँ, प्रकाश—वे अब बहुत पास हैं, अति निकट—वे आये—वे चले आरहे हैं घर के बिलकुल निकट हैं, और सहसा उषा और सतीश ने देखा—दर्वाजा अनन्त प्रकाश से प्रकाशित है—

उषा पागल सी प्रकाश की ओर देखरही है चकोरी को स्वातिबूँद मिल गई, वह छक गई, तृप्त होगई, उसके नेत्रों में शान्ति है उसके मुख से निकल पडा—

"भैय्या ! विदा ! ! अनन्त विदा ! ! !"

बस वह अपनी यात्रा पर—

दो बूँद अश्रु उसके नेत्रों में और हास्य उसके मुखपर—

विधि विधान के अनुसार,—पर

वह हँस रही है—
संसार पर—
समाज पर—और
समाज के बंधनों पर—
क्योंकि वह आज मुक्त है ।

अर्थी सजाई गई, और त्रिवेणी की ओर अनन्त जनराशि अर्थी के साथ जारही है ।

वायु शान्त है, आकाश शान्त है, त्रिवेणी का जल भी शान्त है—सम्पूर्ण प्रकृति ही शान्त है चिता जल रही है और देवी जारही है—

दूर—बहुत दूर ! उस पार !!

—गुलाबचन्द गोयल

मानव की कहानी

" क्या चाहती हो "

" तुम्हे ले जाना । "

" कहाँ "

" उस पार "

" मैं तो ' इस पार ' का प्राणी हूँ । "

" मै तो तुम्हे यहाँ नही रहने देना चाहती "

" नहीं, यह नही हो सकता । "

+ + +

जीवन और मृत्यु परस्पर बाते कर रहे हैं । जीवन मृत्यु के बिना नही रह सकता और मृत्यु जीवन के बिना । दोनो जानते हैं कि ' एकाकार ' हुए बिना ' पूर्णता ' नहीं है फिर भी जीवन अपने अस्तित्व को इतनी जल्दी मिटाना नहीं चाहता ।

+ + +

जीवन की परिभाषा है—"सत्यं, शिवं और सुन्दरं की उपासना" और मृत्यु की "शान्ति और मुक्ति की गोद में अनन्त निन्द्रा ." जीवन साधन है और मृत्यु साधना। जीवन 'पुरुष' है और मृत्यु 'स्त्री'। ससार-सागर मे लहराता हुआ जीवन 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का जामा पहने 'इसपार' से अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। 'उसपार' अनन्त-लोक की रानी मृत्यु-सुन्दरी शान्ति और मुक्ति की वर माला लिए 'जीवन' की बाट जोहती रहती है। जिस क्षण दोमों मिलते हैं उसी क्षण मानव की कहानी भी समाप्त होती है।

—रामनारायण विजयवर्गीय

समाज और जीवन की विषमता के आदर्श
कलापूर्ण की कहानी

प्राइज़-कप !

दीपावली अपने दीपकों की सेना सजाकर सारे शहर में छागई थी। पृथ्वी ने आकाश की छवि धारण कर ली थी जैसे अमावस्या का कहीं पता ही न हो। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, दीपकों के सिवाय और कुछ भी दिखाई न देता था। मानव-समाज बाण, फुलझड़ी, अनार, गुब्बारे इत्यादि के द्वारा आकाश को भी अपनी खुशी का परिचय दे रहा था। किन्तु फिर भी कुछ थोड़े से टिमटिमाते हुए तारागण मनुष्यों को जीवन की क्षण-भंगुरता का ज्ञान देने का विफल प्रयत्न कर रहे थे।

थियेटर में जन-समुदाय रूपी समुद्र मि. प्रकाश के वक्तव्य के साथ, दुख, हर्ष और जोश के आवेग में हिलोरें ले रहा था।

“दुनिया के इतिहास मे प्रकाश की इतनी जरूरत कभी नहीं हुई जितनी की आज है। एक देश के बाद दूसरा देश मिट चुका है। सारा ससार युद्ध की आग से जल रहा है। पृथ्वी खून से लथपथ हो चुकी है। पेट भूख से जला जा रहा है और इस पर भी ऊपर से दुश्मन आग के गोले बरसा रहे हैं। निर्दोष जनता के घर-बार, धार्मिक स्थान कला के सर्वोत्तम नमूने आज खंडहर बन रहे है। चारों तरफ खून, आँसू, भूख, विषाद और मृत्यु का ही साम्राज्य है। बंगाल आज भूख से बुरी तरह पीडित है। कल हमारी भी बारी आ सकती है। हम मालवे मे हैं, हम सेन्ट्रल-इंडिया में है, इसके भरोसे हमें नही रहना चाहिये। अतिथि-सत्कार के लिये हिन्दुस्थान प्रसिद्ध है। अतिथि-सत्कार का यह अर्थ कदापि नही कि हम उन्हे भोजन करावें जिनके पेट भरे हुए है। बंगाल की वीभत्स स्थिति है। जलाशयो में लाशे! सडको पर नर ककाल!! क्षुधार्त लिपटे हुए स्त्री-पुरुष अपने नन्हें बच्चो के साथ ट्रेन के सम्मुख कूद कर आत्महत्या कर रहे हैं। गीध व कुत्ते भुखमरों का माँस नोचते फिरते हैं। सैकडों ठठरियो में से एक ही आवाज आती है—रोटी! रोटी!!

“अभी तक हम इन सभी दर्दनाक किस्सों को तटस्थ रहकर आश्चर्य और अफसोस के साथ सुनते आ रहे हैं।

पर नहीं जानते कि निकट भविष्य में हमारे यहाँ के खेत-खलियान, कल-कारखाने, मन्दिर-मस्जिद, निर्दोष बच्चे और अरक्षित स्त्रियों पर भी दुश्मन द्वारा बमवर्षा होगी। आपको अपने कर्तव्य के बारे में सोचना ही होगा और इतिहास के पृष्ठों को बेबसों के आँसुओं और निरपराधियों के खून से लिखे जाने से रोकना ही होगा। हमारा ऐसे समय उदासीन रहना, हमारी आत्मा की हमेशा के लिये मृत्यु का कारण होगा। जब तक मृत्यु और भूख की विभीषिका मुँह बाये खड़ी है, हम दीपावली कैसे मना सकते हैं! केवल लक्ष्मी का पूजन करके दीपावली का शकुन भर करना ही ठीक न होगा।

"यह समय, राजनैतिक विकारों के झगड़े का और साम्प्रदायिक भेद-भावों का नहीं है। हमें यह न सोचना चाहिये कि यह प्रश्न गांधीइज्म का है, कि जिन्नाइज्म का, कम्यूनिज्म का है कि सोशियलिज्म का। यह समय केवल पीड़ितों की सेवा सिर्फ सेवा का है और इसीलिये जैसा कि आपको विदित ही है मैंने स्वलिखित "सेवा"—नाटक आपकी सेवा में पेश किया। कर्तव्य ने आपको याद किया और आप इस बड़ी संख्या में हाजिर हुए। इस कष्ट के लिये धन्यवाद। आपको जानकर खुशी होगी कि लगभग साढ़े-तेरह-सौ रुपये की आमदनी आज हुई है। मैं आभारी हूँ कि आपने समय-समय हमारे आकर्षक भाव नृत्य व सुमधुर संगीत पर तालियाँ बजा बजा कर, हमारे 'सेवा-सदन' के इस नवीन आयोजन को प्रोत्साहन प्रदान किया और

छात्र व छात्राओं का भविष्य के लिये इस ओर उत्साह बढाया है।

"आप मेरा परिचय जानने के लिये उत्सुक हैं। मैं कुछ भी नही। एक साधारण युवक हूँ। मेरे पास धन नहीं अतएव मैं संसार की थोड़ी बहुत सेवा केवल तन व मन से ही कर सकता हूँ। मेरी लेखनी ही मेरा धन है। ऑफिस जाकर के, ट्यूशन वगैरह करके जो कुछ भी मेरे पास बाकी समय रहा, उसी में मैंने यह नाटक लिख, डायरेक्शन दे थोडी-बहुत आपकी सेवा की। मैं जानता हूँ इसमें त्रुटियाँ हैं किन्तु आप उसे क्षमा करेंगे।

"हाँ एक बात और। आपने तालियों के बीच यह प्राइज-कप मुझे पारितोषिक के रूप में प्रदान किया है; मैं चाहता हूँ यह भी बंगाल-पीड़ितों के काम मे आजाय। इसकी कीमत वैसे मुश्किल से करीब तीस रुपये होगी। पर यह मेरी कला और सेवा दोनो का ही प्रतीक है। आप द्वारा प्रशंसा का साक्षात् रूप है। मुझे उम्मीद है कि आप इसका यथोचित मूल्य देकर रिलीफ-फंड को बढायेंगे और.. ... ।"

"महाशयजी! प्रशंसा के कुल शब्द तुमपर निछावर हैं। मै इस कप् के पाँच सौ एक रु. देती हूँ।"

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच लोगों ने देखा—

स्टेज के पास की सीट पर से नई दुलहन की तरह आसमानी साड़ी मे सजी हुई एक रूप-राशि उठ खडी हुई और उसके हाथ की चूड़ियाँ एक बार कई आँखों में

चकाचौंध पैदा करती हुईं चमाचम चमक उठीं।

यौवन और आशा के सुनहले सपनों को लोगों ने उस दिन उसकी पलकों पर साक्षात थिरकते हुए पाया।

और प्रकाश ने भी देखा—उस रूपराशि के उभरे हुए सीने की उन-ऊँचाइयों के नीचे यौवन का तूफान करवटें बदल रहा था।

उसने सम्हलकर कहा—

" हम सब के लिये यह बड़े ही सौभाग्य की बात है। मैं हृदय से आभारी हूँ, देवीजी, आपकी इस कृपा का।.. मेरे योग्य कोई सेवा ? "

" आप ट्यूशन भी करते हैं न ? "

" जी। "

" तो कल से आप हमारे यहाँ........। "

वह सहम-सा गया। वह जानता था कि वह अपने दिल का संदेश, उस कप की कीमत और ट्यूशन के हाथ भेज रही है। वह बीच में ही बोल उठा—

" मुझे एक तो अवकाश कम है और फिर इस बड़े भारी शहर में एक जगह से दूसरी जगह जाना. ....। "

" उसकी कोई फिक्र नहीं। मैं मोटर भेज दिया करूँगी।........कांता कांचन का सदुपयोग करना जानती है। "

स्त्री-रूपी बारूद से वह अलग रहना चाहता था पर अब वह लाचार हो चुप था।

उसकी चुप्पी ही स्वीकृति चिन्ह थी।

[२]

दूसरे दिन ऑफिस मे—

उसके टेबिल पर चारो तरफ फाइले बिखरी हुई पड़ी थी। वह अपने विचारों मे उलझा हुआ बैठा था। यौवन प्याला छलक रहा था—डर था ढुलकने का। पैर डगमगा रहे थे—डर था गिरने का।

" क्या हो रहा है मि. प्रकाश! क्या दिन में तार गिन रहे हो ? "

" आप खुद अपनी आँखो से देख सकते हो। "

" सीधे प्रश्न का टेढा जवाब ! "

" जी नहीं। टेढ़े प्रश्न का सीधा जवाब। "

" खैर जाने भी दो। कल रात की सफलता के लिये Congratulations [बधाई] ! "

" Thanks [धन्यवाद !] "

" अब तो यार पाँचो उंगली घी मे और सिर कढाई मे ! "

" अपनी-अपनी भावना है। "

" ऐसे सुनहरे मौके जीवन मे बहुत कम आते हैं मि. प्रकाश ! "

" रहने भी दीजिये। ये सब सुनहरी जाल आत्मा को फंसाने के लिये ही होते हैं ! "

" तुम भी यार, पूरे सतयुगी-ईडियट [बेवकूफ] हो ! "

" नहीं। फिर भी कला और सेवा की कीमत चाँदी-सोने से नहीं की जा सकती।—दिल से की जाती है। "

" अच्छा हमीं से उड़ने लगे हो? अरे भाई! आज-कल तो कला का दूसरा नाम है नारी को रिझाने का एक मात्र साधन, और सेवा केवल स्वार्थ-सिद्धि ही तो है!"

" मालूम पड़ता है दिन के बारह बज चुके हैं तभी तो तुम्हारी अक्ल यह सब कुछ नहीं समझ सकती।" प्रकाश ने हँसकर बात को टालते हुए कहा।

सेक्रेटरियेट-ऑफिस के बगीचे में सामने ही फव्वारे का पानी निरन्तर गिरकर कर्तव्य का पाठ पढ़ा रहा था पर किसी को भी उससे कुछ सीखने की न तो चाह ही थी और न फुरसत ही।

[३]

तुम जाओ, बड़े भगवान् बने!
इंसान बनो तो जानें!!
हम पाप करें और दूर रहें।
तुम पार करो तो मानें!!

शरद की मीठी रात में, तारे कान्ता की इन स्वर लहरियों पर अपनी पलकों में रूप का खजाना भरे धीमे-धीमे विहँस रहे थे। बादलों की बिखरी हुई टुकड़ियाँ मौन रूप से किसी होनेवाली घटना की तरफ इशारा कर रही थीं। हवा धीमे-धीमे बहते हुए रुक-रुक जाती थी। गीत के साथ ही उसकी पैजनियाँ भी कभी-कभी छम-छमा उठती थीं। उसकी भाव-भरी टेर प्रकाश की साँस निकलती थी और रुक-रुक जाती थी।

" सुना आपने मेरा गीत ? "

" हाँ । "

" तो कुछ प्रशंसा, कुछ ... । "

" बहुत अच्छा गाती है आप ! ..अब मुझे इजाजत हो ।"

उसकी आँखों में गुलाली खिल उठी ।

" नहीं मास्टरजी ! आज मैं इस गीत का अर्थ आपसे समझकर ही रहूँगी । "

" पर मुझे जाना जरूरी है और समय हो चुका है ।"

" जाना है तो चले जाना । ये रात के तारे भी चले जावेंगे और तुम भी चले जाना ! "

उसका इठलाता हुआ यौवन कुछ कह उठा । प्रकाश के हाथो के तोते उड़ गये वह चुप था ।

" देखिये न, इन तारों का चुप रहना ही हमें रुलाता है । " उसने ठिनक कर कहा ।

" मेरे भाग्य के साथ मत खेलो कांता ! "

" तुम 'प्रकाश' हो पर क्या कभी तुमने पूरे एक महीने-भर पढ़ाने के बाद भी यह सोचा कि इतनी मोहकता, इतना पैसा पाकर भी मेरी आँखो मे वेदना की काली छाया क्यों है ? आँखे हृदय की वाणी हैं । इतना समझ कर भी तुम मेरे हृदय की वेदना को क्यूँ नही दूर करते ? इस काली छाया को दूर करने के लिये 'प्रकाश' की आवश्यकता है, यह आप क्यू नहीं समझते ? "

" मेरी आत्मा की हत्या करने से तुम्हें क्या मिलेगा देवी ! "

" उस दिन इलेक्ट्रिक प्रकाश से चमकते हुए स्टेज पर आपके सौंदर्य निखरित मुखचन्द्र को मैंने देखा और मैं देवी रहने के लिये असमर्थ होगई।"

" यह पाप है ! "

" अपनेवाले को छोड़ कर दूसरे से प्रेम करना कैसे पाप हो सकता है ? क्या प्रेम किसी एक सर्कल की चीज़ है और उसे उसी में ही घूमना चाहिये ? निषेध ही तो सब अनर्थों की जड़ है ! "

मक्खियाँ मडरा रही थीं।

" पर मनुष्य को समाज के साथ चलना पड़ता है और इसलिये . . । "

" वह समाज जिसके डर से मेरे माँ-बाप यह भूल गये कि वे भी कभी सन्तान थे। मैं किशोरावस्था पार कर रही थी। समाज की उंगली उठने के डर से, और कोई सुयोग्य वर न मिलने से उन्होने मुझे इस करोडपति के, पूरे पैंतालिस वर्ष के सेठ के हाथ बेच दिया। चिउँटी चढ रही थी। उससे बचाने के लिये उन्होंने मेरे ऊपर एक पहाड़ डाल दिया ! इस पर भी दुर्भाग्य यह कि वे अपने काम-धंधों में ही व्यस्त रहते हैं—रात-रात भर गायब। मै औरत हूँ और मनुष्य में दुर्बलतायें होती हैं। मेरे पति मुझसे जितना चाहें उतना मैं उन्हें दे सकती हूँ। मैंने न कभी उन्हें इनकार किया और न करूँगी। फिर अगर कुछ बाकी रहजाय व मैं भी तृप्त न होऊँ और इसलिये वह मैं किसी दूसरे को दूँ तो उसमें उन्हें या समाज को क्या आपत्ति

हो सकती है ? ”

कामुकता ओट में खडी होकर, मुस्करा रही थी और लज्जा अपने हर एक कपडे उतार फेंक रही थी ।

“ यह तुम्हारा कुतर्क है कांता ! ”

“ मैं समझती हूं तुम्हारी एक महत्वाकांक्षा है । तुम चाहते हो तुम एक प्रसिद्ध कलाकार बन सारे संसार पर छा जाओ । लेकिन तुम भूलते हो कि पैसे की कमी तुम्हारे मूल्य को अधिक न होने देगी । तुम्हारे कार्य करने की क्षमता को भी निर्बल बना देगी । दौलत शरीफ-दुनिया में जाने का टिकिट है । सफलता पाने के लिये रुपये क टिकिट की जरूरत होती है । मेरे पास संपत्ति है और मैं तुम्हारी कला की कीमत भी करती हूँ । ”

“ वह तो तुम उसी दिन रुपये देकर कर चुकी हो ! ”

“ मेरे प्रेम का.... । ”

“ तुम्हारा प्रेम स्वार्थी और उड़द की सफेदी की तरह है और तुम एक रेशमी रस्सी हो ! ”

यह उसके ताश का अंतिम पत्ता था । प्रकाश क उत्तर न पत्थर का काम किया और कांता की आशा कुचली हुई नागिन की तरह बैठ गई ।

पर फिर भी उसने हारे हुए जुआरी की तरह बेशर्मी से कहा—“ इसका अंजाम ठीक न होगा ! ”

परन्तु वह आत्म संतोष से छलक उठा और एक झटके में ही कमरे से बाहर होगया ।

जहाँ दुराचार को जाना होता है, वहाँ प्रकृति निर्लज्जता

को पहिले ही भेज देती है।

+ + +

क्षितिज के पश्चिम कोर की तरफ मंद गति से बढ़ता हुआ अर्धचन्द्र निस्तेज हो चला था। नक्षत्रों का झिलमिल प्रकाश भी क्षीण होता जा रहा था। इसी समय मध्यरात्रि ने खिड़की में लगी हुई लोहों के तारों में से झांककर देखा—

प्रकाश बिस्तरेपर करवटें बदल रहा था। आज की रात्रि उसके अरमानों की होली की रात थी। वह रातभर छटपटाता रहा। वह प्रतिपल सोचता रहा। जीवन के कटु अनुभवों ने उसके हृदय की भावनाओं को कुचल दिया। अरमानों की आहुती जल उठी। उम्मीदें तड़फड़ा उठी। तमन्नायें रो उठीं। क्योंकि काली और अंधी दुनिया से अपनी सेवा और सत्य का उचित पुरस्कार पाने की उसकी आशा आज सती हो रही थी।

उसकी आँख रातभर न लगी और प्रातःकाल के पहिले ही उसे बुखार ने धर दबाया। वह ऑफिस न जा सका और न कोई छुट्टी की अर्जी ही ठीक टाइम पर भेज सका।

[४]

तीसरे दिन—

जहाँ पर वर्ड की किस्मत फड़फड़ाया करती है, ऐसे ऑफिस में गोरे शरीर और काले दिलों की कमी न थी।

उसका चेहरा असंतोष. अपमान, व्यथा और द्वन्द्व की अग्नि में झुलसने पर भी आत्म-सान्त्वना और सर्वस्व त्याग

की भावना की मधुरता से चमचमा रहा था। पर उसके हृदय मे एक तूफान-सा घिरता चला आ रहा था।

“ऐ हजरते ईसान ! आप हैं किस ध्यान में ?
लाखों हैं मर गये, दिल के इस अरमान मे ! ”

किसीने हँसकर, प्रकाश को छेड़ते हुए पूछा।

“. .. .... । ”

“क्यो साहब ने क्या लिखा है ? आप उस कागज में कुछ खो से गये हैं ! ”

“हूँ। ”

“क्यो ? ”

“तुमसे मतलब ? ”

“हमारा दिल जो तुमसे हमदर्दी रखता है। ”

‘ मगर आप क्लर्क जो है ! ”

“तो क्या क्लर्कों के दिल नहीं होता ? ”

“होता तो है। ”

“फिर ? ”

“पर वह हमेशा स्वार्थ, गुलामी, दूसरे को आगे न बढने देना, झूठ और प्रपंच इत्यादि के ख्यालो से भरा हुआ।”

“आज कुछ नाराज से हो ! आखिर बात क्या है ? ”

“मैं इस कागज पर कुछ लोगों के दिल-दिमाग की छवि देख रहा हूँ।”

“किन लोगों की ? ”

“तुम सब बिच्छुओ की—काले हृदयों की। जो कि हमेशा पीठ पीछे डंक मारने के, ‘स्टेबिंग इनद् बेक’ के

आदी हूँ! एक दिन ऑफिस में न आये और बिच्छुओं को मौका मिल गया। किसी वफादारे-ऑफिस ने साहब के कान में जहर उगल ही दिया कि मेरी तबियत तो अच्छी है पर ड्राम वगैरह में उलझा हुआ रहता हूँ। हमारी सुविधा-असुविधा से दूसरों को क्या सरोकार! साहब तो बिलकुल सीधे हैं पर चुगलखोरों के कारण उन्होंने मुझसे एक दिन की Casual leave के लिये भी मेडिकल सर्टिफिकेट तलब किया है। यह सत्य का परिहास है।"

"क्या कहते हो? ऑफिस डिसिप्लिन का तो कुछ ख्याल करो।"

पर वह किसी शहीद की तरह फाँसी के तख्ते की ओर मधुर-भाव से बढ़ रहा था। उसने दृढ़ होकर कहा—

"क्या-डिसिप्लिन इसे ही कहते हैं कि सच्ची बात न कही जाय?"

उसका सम्पूर्ण मानस आहत पक्षी की भाँति क्षोभ से वेदना-संकुल हो, अभिव्यक्ति के लिये छट पटा उठा, और—

उसने Resignation (इस्तीफा) की निडर और अमर पंक्तियाँ लिखने के लिये कलम उठा लिया।

पराधीन देश में मानवीय आदर्श-भावनाओं का उदय होना ही उन्नति है।

काला साँप

मुग़ल बादशाहों का इतिहास याद करते-करते कुमुद ने किताब बन्द करके कहा “ सरोज, क्या तुमने कभी सोचा है कि आकाश का रंग काला क्यों बनाया गया ? ”

“ जान पड़ता है, अब तुम्हारी कविता का आरम्भ होगया, भला आकाश के कालेपन से हमारी इतिहास की पुस्तक का क्या सम्बन्ध है ? परीक्षा निकट है, इस समय तो हमें इधर-उधर की बातें छोडकर अपना पाठ ही याद करना चाहिये । ” सरोज ने उत्तर दिया ।

‘ पाठ याद करते-करते जो शक्ति खर्च हो जाती है उसे फिर वापिस लाने के लिये कुछ मनोरंजन बात भी होनी चाहिये । मैट्रिक परीक्षा पास करने की अपेक्षा हृदय

को आनन्दित करना अधिक जरूरी है। हाँ तो, मेरे प्रश्न का उत्तर दो सरोज, आकाश का रंग काला क्यों बनाया गया ?"

"यह संसार धोखा छल, कपट आदि का घर है, स्वच्छ हृदय मे भी कहीं न कही कालिमा निकल ही आती है, शायद ब्रह्मा ने आकाश को इसीलिये काला बनाया है कि, लोग संसार के गुप्त कालेपन से सावधान रहने का पाठ सीखें, उन्हें निरन्तर कालापन दिखायी पडता रहे।"

"तुम्हे पाठ वाली बात अभी भूली नहीं। मेरी समझ मे ब्रह्मा बडा ही मूर्ख समझा जाता अगर आकाश को वह बर्फ की तरह सफेद बनाता, फिर जरा सोचो तो सही, सफेद आकाश मे सफेद चन्द्रमा, सफेद तारे तो एकदम फीके हो जाते।"

"और भी देखो, सरोज, बादल काला न होता तो बिजली की उसमें क्या छवि होती, मुझे तो जान पडता है कि संसार की सुन्दरता बढाने ही के लिये विधाता ने कालेपन की रचना की है।"

"लेकिन कालापन तो अशुभ माना गया है। अभी उस दिन हम लोगो ने 'मुद्राराक्षस' में पढा है कि नंद ने श्राद्ध में से चाणक्य को इसीलिये उठा दिया था। काले पति को स्त्रियाँ पसन्द नही करतीं और काली स्त्री को पुरुष पसन्द नही करते।"

"यह तुम उलटी बात कह रही हो सरोज, वास्तव मे स्त्रियाँ काले पति को ही पसन्द करती हैं। श्रीकृष्ण काले

ही तो थे, लेकिन एक नहीं, सैकड़ो स्त्रियाँ उनपर निछावर होती थीं। श्रीराम भी तो श्यामवर्ण थे, उनके रूप को देखकर कौन नहीं मोहित हो जाता था।”

“एक बात कहूँ, नाराज़ तो न होगी, कुमुद”—सरोज ने जरा मुस्कराकर कहा।

“नहीं, नहीं, नाराज होने की क्या बात है; तुम कह डालो।”

“मैं यह पूछना चाहती हूँ कि क्या तुम अपनी शादी किसी काले आदमी से करोगी? अगर तुम तैयार हो तो अफ्रीका से मैं किसी हब्शी को बुलाने की कोशिश करूँ।”

“समाज का बंधन तोड़कर अफ्रीका के किसी हब्शी को पति बनाना तो सम्भव नहीं है, फिर विवाह को तो मैं ईश्वरीय विधान मानती हूँ, किन्तु इतना तो मैं निश्चय के साथ कह सकती हूँ कि काले रंग पर मेरी विशेष श्रद्धा है।”

“कुमुद, जिन श्रीकृष्ण का तुमने अभी नाम लिया वे कितने कपटी थे, कितनी गोपियों को उन्होंने धोखा दिया! काले रंग वाले का विश्वास नहीं किया जा सकता।”

“सरोज, पहले तो मैं यह नहीं मानती कि कृष्णजी कपटी थे, उनका यही अपराध था कि अज्ञान में फँसी हुई गोपियों को वे एक ऊँचे दर्जे की बात बताना चाहते थे, किन्तु यदि यह मान भी लें कि श्रीकृष्णजी कपटी थे, तो क्या केवल एक काले व्यक्ति के कपटी होने से सभी काले लोगों का स्वभाव कपटमय मान लिया जायगा, श्रीरामचन्द्रजी

भी तो काले थे, उन्हें तो किसी ने कपटी नहीं कहा।

सरोज ने फिर मुस्कराकर कहा, जो हो, इसका निर्णय तो तभी हो सकेगा जब तुम्हारा विवाह किसी काले पुरुष के साथ हो।

दो वर्षों के बाद संयोग से कुमुद का विवाह लखनऊ में एक ऐसे ही महाशय के साथ हुआ जो सुन्दर और स्वस्थ होने पर भी साँवले रंग के थे,। ये मिस्टर वर्मा थे जो लखनऊ में एक हाईस्कूल में मास्टर थे।

[२]

कुमुद के ससुराल जाने पर सरोज को बहुत दुःख हुआ। पढ़ने में वह अकेली होगई। कुमुद को भी एक नवीन जीवन की समस्यायें मिलीं, जिनसे कभी-कभी घबराहट हो जाती थी। समय निकालकर दोनों एक दूसरे को पत्र भेजती रहीं। कुछ दिनों में सरोज के पत्रों के लिये कुमुद से अधिक मिस्टर वर्मा उत्सुक रहने लगे और कुमुद के हाल चाल जानने की अपेक्षा मिस्टर वर्मा के परिहासों के लिये सरोज उत्कंठित रहने लगी। विवाह के अवसर पर थोड़े मिनटों के बीच मिस्टर वर्मा ने अपनी स्त्री की प्रिय सहेली का जो परिचय प्राप्त किया था वह इस पत्र व्यवहार में बहुत सरस हो उठा और वे व्यग्रतापूर्वक उस समय की प्रतीक्षा करने लगे जब सरोज से जीभर कर बातचीत करने का मौका मिले।

कुमुद ससुराल में दो महीने के बाद विदा हो गई।

गर्मी की छुट्टियों में मिस्टर वर्मा भी ससुराल आये। सरोज से उनकी भेंट हुई, खूब बातें हुईं। हृदय मिठास से भर गया, लेकिन तृप्ति न हुई। जब कभी कोई परिहास होता, कुमुद और सरोज एक ओर हो जाती थीं और मिस्टर वर्मा अकेले पड जाते थे। निस्सन्देह मि. वर्मा हारते थे, किन्तु हारने में विजय का ही अनुभव करते थे, क्योंकि उन्हीं को सब से अधिक रस मिलता था। मि. वर्मा दो तीन दिन के लिये आये थे, किन्तु इस मधु जाल में पड़कर उन्होंने यह नहीं जाना कि एक सप्ताह किस प्रकार बीत गया। चलते समय भी सरोज के सम्बन्ध में उतने ही अतृप्त रह गये जितने आने के पहले थे।

[२]

घर पहुंच कर मि. वर्मा ने सरोज के नाम एक पत्र लिखा।

प्रिय सरोज देवी,

चलते समय तुमने कहा था कि घर पहुँच कर अपने समाचार की सूचना दीजियेगा। किन्तु तुम्हें पत्र लिखने के लिये बैठना इस समय मेरे लिये बड़ा ही कष्ट कर हो रहा है, तुम्हारी मधुर मूर्ति आँखों के सामने खड़ी है, फिर भी मैं आँसुओ के मारे उसे देख नहीं सकता। तुम्हारी चंचलता से भरी आँखें, मीठी हँसी, गूढ़ परिहास और व्यंग से पगी हुई मृदुल वाणी बार-बार मेरे हृदय की वेदना को बढ़ा रही है। तुमसे मिले बिना अब शान्ति

नहीं है। पता नहीं तुम बी ए इलाहाबाद में पढ़ोगी या लखनऊ में, लखनऊ तो कानपुर से निकट भी है। किन्तु तुमने बतलाया था कि इलाहाबाद में कुछ सम्बन्धियो के कारण विशेष सुविधा है। सरोज, तुम किसी सुविधा पर ध्यान न दो, केवल मेरी सुविधा पर ध्यान दो। मैं तुमसे वादा करता हूँ कि तुम्हारे साथ कुमुद को भी भर्ती करा दूँगा। सरोज, जैसे बने वैसे लखनऊ आओ। मेरा पत्र कुमुद को मत दिखाना और इसका उत्तर शीघ्र देना।

तुम्हारा प्रेम पुजारी

वर्मा

इस पत्र को लिखकर मि वर्मा ने डाक में छोड़ दिया। तीन-चार दिन के भीतर ही एक बहुत सुन्दर लिफाफा आया जिस पर बड़े मनोहर अक्षरों मे उनका नाम और पता लिखा था। उत्सुकता से उनका हृदय उछलने लगा। काँपते हुये हाथों से उन्होने लिफाफा खोला। सरोज ने लिखा था—

श्रीमान् वर्माजी,

मैंने तो आप से एक बार भी नहीं कहा था कि आप मेरे नाम पत्र लिखियेगा। बहिनजी के नाम तो आपनें एक भी पत्र नहीं भेजा और मेरे नाम भेज दिया। आप मना न भी करते तो भी आपका यह पत्र बहिनजी को कैसे दिखा सकती थी? उन्हे मेरे सम्बन्ध में कुछ शंका होने

लगी है और वे मुझसे कुछ सावधान रहने लगी है। यदि यह पत्र उन्हें दिखा दूँ तो उन्हें बहुत अधिक मानसिक वेदना होने लगेगी। मैं यह पसन्द नहीं करती। आप दोनों के वैवाहिक जीवन में मुझे काँटा नहीं बनना है। इसलिये न तो मैं लखनऊ आने का विचार कर सकती हूँ और न आपके पत्रों का उत्तर दे सकती हूँ। आपके नाम मेरा यह प्रथम और अंतिम पत्र है।

—सरोज

पत्र पाकर मि. वर्मा को कुछ निराशा हुई। किन्तु इस समय उनकी दशा उन लोगों की सी थी जो एक बोतल शराब पीलिये हो। वे निरंतर सरोज के पास पत्र लिखते रहे। साथ ही सरोज ने भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, उसने उनके एक भी पत्र का उत्तर न दिया। पत्र न पाने पर भी मि. वर्मा बड़ी होशियारी से चिट्ठियाँ लिखते थे, जिससे यह ध्वनि निकलती थी कि सरोज ही बारम्बार उनके पास पत्र लिख रही है और वे स्वयं उदासीन है। विचित्र बात तो यह थी कि दो महीने के भीतर जहाँ आठ चिट्ठियाँ सरोज के नाम गईं वहाँ कुमुद के नाम केवल एक गई।

एफ. ए. का परीक्षा फल निकल जाने के बाद मि. वर्मा फिर एक बार ससुराल जाने का विचार करने लगे। कुमुद और सरोज दोनों ही पास होगयी थी।

[४]

मि. वर्मा की चिट्ठियों से सरोज परेशान होगई। वह चाहती थी कि उनका यह पत्र व्यवहार बन्द होजाय। किन्तु यह बात अब उसकी शक्ति के बाहर की मालूम हो रही थी। मि. वर्मा ने अपने आखिरी पत्र मे आने की सूचना दी थी, इससे वह और भी सशंक हो गई थी। उसने अब मि. वर्मा से न मिलने का निश्चय कर लिया था, किन्तु यह भी स्पष्ट था कि उनसे यदि वह न मिलेगी तो वे स्वयं उससे मिलने का उपाय करेंगे और अंत में सब बाते प्रकट हुये बिना न रहेंगी। ऐसी दशा में उसने सोचा कि क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि मैं कुमुद को मि. वर्मा के सब पत्र दिखला दूं, पत्रों को समझ लेने पर मि. वर्मा को ठीक रास्ते पर लाने की जिम्मेदारी कुमुद पर आ जायगी, साथ ही कुमुद मेरी ओर से निश्चिन्त भी हो जायगी। अन्त मे इसका पक्का निश्चय करके उसने एक पत्र कुमुद को इस आशय का लिखा कि वह कृपा करके संध्या को उससे मिलने के लिये आवे।

[५]

कुमुद ने रातको एक भयानक स्वप्न देखा—सोने की एक जंजीर क्रमशः काले सर्प के रूप में परिणत होकर उसी को डसने के लिये आगे बढा था कि अचानक उसकी नींद टूट गयी। इस स्वप्न का क्या अर्थ हो सकता है? दो-दो महीने होगये, मि. वर्मा एक साधारण पत्र भेजकर मौन

बैठे है; इसका क्या कारण है ? सरोज भी इधर मुझसे कम मिलती है; कुछ खिंची-खिंची-सी रहती है। सरोज की ओर वे आकर्षित तो अवश्य ही बहुत अधिक हैं; सम्भव है उसके यहाँ पत्र भेजते हो। मुझे चाहिये कि सरोज के प्रति अपना व्यवहार पहले की तरह रखकर इस बात का पता लगाऊँ कि दोनो मे किसी प्रकार का पत्र व्यवहार तो नहीं चल रहा है। कुमुद यही सब सोच रही थी कि अकस्मात उसे सरोज का पत्र मिला। उसने सहर्ष उत्तर मे लिख दिया कि पाँच बजे के लगभग आऊँगी।

[६]

काफ़ी गर्मी पड़ रही थी। बिजली का पंखा खोलकर एक मासिक पत्र पढ़ते-पढते सरोज सो गई। साढ़े चार बजे के लगभग उसकी नींद टूटी। मि वर्मा के पिछले पत्रो को देखे कई दिन होगये थे, इस लिये उन सबको निकालकर एक बार वह उन्हे पढ़ने लगी।

"कितना पतित यह आदमी है, इसने विवाह किया है, इसके विवाह करने का क्या अर्थ है ? मान लिया इस आदमी का मेरे ही साथ विवाह हो जाय तो क्या किसी अन्य अविवाहित लडकी को यह इसी तरह पत्र न लिखेगा ?" यह सब सोचते हुये सरोज बेचैन होगई; धीरे-धीरे पाँच बज गये।

यकायक सरोज को याद आ गया कि अब कुमुद आती होगी। उसने चिट्ठियो को समेट कर मेज की दराज मे

रखा और इसके बाद वह मुँह धोने स्नानागार में चली गई।

इसी बीच में कुमुद आ गई। सरोज को कमरे में न देखकर उसने उसे घर के भीतर ढूँढने की कोशिश नहीं की, इसके विपरीत कुछ सन्तुष्ट-सी दिखती हुई वह कमरे के भीतर गई और वहाँ इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगी। अचानक दराज खोलते ही अनायास ही उसे मि. वर्मा की चिट्ठियों का बंडल मिला। एक चिट्ठी पढते ही उसका माथा ठनका, शेष को न पढकर, बंडल अपनी जाकेट के जेब में डालकर बाहर के लिये लम्बे कदम रखे।

सरोज मुँह धोकर आयी तो उसने देखा कि कुमुद न जाने क्यों आकर भी वापिस चली जा रही है। उसने पूछा, बहिनजी आओ, बैठो, जा कहाँ रही हो।

कुमुद ने उत्तर दिया, फिर मिलूँगी, एक चीज भूल आयी हूँ।

यह कह कर कुमुद दर्वाजे पर खडी गाड़ी पर बैठी और घर की ओर चली।

सरोज ने देखा कि कुमुद जाकिट के जेब मे से एक पत्र निकाल कर पढती जा रही है। वह घबरायी हुई मेज़ की दराज की ओर दौडी। देखा तो पत्र गायब थे। यकायक उसके मुँह से निकला, 'आह! काला साँप मुझे डस गया।'

—श्री राय दुर्गाप्रसाद रस्तोगी

पूंजीवादी मनोवृत्ति का एक चित्र

गौरी श्याम
या
श्याम सुन्दर

उस रोज जब मैं रोज जैसे ही अपने काम से गाँव पर गया तो वहाँ सारे मजदूरों में वह थी। काम कर रही थी। नाम था "गौरी" लेकिन गौरी नाम होने पर भी न तो वह गौर वर्ण की थी और न विशाल नैत्री ही। वरन इन सबके विपरीत वह गाँव की स्त्रियों में सबसे अधिक असुन्दर थी; चेहरे पर वर्षों की गरीबी व ठंड, गर्मी और बारिश ने अलग अपनी छाप छोड़ रखी थी। और लगातार दस घंटे

की धूप गर्मी से उसका सारा बदन गहरे काले रंग का हो गया था। और कालेपन के बाद मानो वह बारिश की चोटें सह-सह कर पत्थर सी मजबूत होगई थी।

उसकी गर्दन और कंधो के बीच चमडे की एक गेंद-सी झूल रही थी। जब वह चूने की तगारी उठाती तो वजन से उसकी वह गेंद बैठ-सी जाती थी और फिर पुनः तगारी खाली होने पर फूल उठती थी। ऐसा न जाने दिन में कितने बार होता था और वह चुप थी शात; अपने काम में तल्लीन। मानो उस उठती बैठती-सी गेंद से या कि शरीर और मनः प्राण से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं हो।

तगारी आती व खाली हो फिर उसके सिर पर रख दी जाती। इस बीच सब मजदूर विश्राम लेते। कोई तमाखू पीता कोई खाता तो कोई और किसी बहाने विश्राम ले लेता। लेकिन उसने विश्राम से नाता तोड दिया है। न जाने कब से उसने आराम नहीं किया है। सूर्य निकलने से सूर्य डूबने तक उसका कोई सगी नहीं है। सिर्फ रात में सो लेती और फिर सुबह जुत जाती किराये की गाडी में चलने वाले उस बैल की तरह जो मालिक की इच्छा पर चाहे जब, चाहे जिस काम पर जाने को मजबूर होता है।

सभी मजदूरो के बीच वह एक खिलवाड-सी थी। कोई आकर उसे झझकोर देता तो कोई धक्का दे देता, तो कोई मनचाही गालियाँ ही देते निकल जाता बगल से सटकर। लेकिन वह सदा मौन रहती। मुस्कराहट सदा उसके अधरो पर खेलती रहती थी।

रोज की तरह आज भी वह अपने काम मे तल्लीन थी। क्योंकि उसके मालिक का मकान जो बन रहा है। इसी नाते वह जल्दी-जल्दी तगारियाँ ढोती जा रही थी। किन्तु सब मजदूर और कारीगर उससे नाराज हैं; क्योंकि उसके जल्दी-जल्दी काम करने पर उन्हे भी जल्दी करना पड़ता है और इसीलिये शाम को छुट्टी होते वक्त काम करने वालों में से एक ने चिढ़ाया डराया-सा उसे, अब देखते हैं कल कैसे जल्दी मचाती है। और वह तनिक मुस्करा दी। जल्दी-जल्दी सामान बटोरने की व्यग्रता में उसके पाँव पास की गहरी भींव में जा फिसले। पत्थरों की चोट से उसके सिर से खून बहने लगा। जो लगातार उसके मुंह पर से फिसलता हुआ नीचे की ओर आ रहा था। और उसकी मिट्टी के रंग से रंगीन साड़ी और देह को तर करता जा रहा था।

उसने पुकारा "मालिक......"

और मालिक कह रहे थे; "मेरा क्या दोष ? तू अन्धी थोड़े ही है।"

यूं एक ओर जहाँ "गौरी" के "श्याम" चेहरे पर रक्तिम लालिमा लिये गोल गोल अश्रुकण चमक रहे थे, वहीं दूसरी ओर मकान मालिक "श्याम-बाबू" के "सुन्दर" चेहरे पर काली हँसी का अट्टहासपूर्वक नर्तन हो रहा था।

—श्रीशिवनारायण उपाध्याय

मिट्टी की दुनियाँ

कमलनयन से बन्धुगुप्त का पुराना परिचय है। दोनो मे असीम स्नेह है। यहाँ तक की समाज जब कभी भी संसार के मुख्य चौराहे पर दोनो को देखता है तो युगल-जोडी के रूप ही मे। स्वभाव एक-दूसरे का नही मिलता। कमलनयन का कथन है—"मुझे दुनियाँ से कोई वास्ता नही" और बन्धुगुप्त कहता है—"जब कि मैं दर्शक बनकर आया हूँ तो सभी से सम्बन्ध विच्छेद कर जी नही सकता—और यदि कमलनयन के विचारों से मैं सहमत भी हो जाऊँ तो मुझे कुछ देखने ही को नही मिल सकता। कुछ न कुछ देखते रहने पर ही तो हम किसी को भला बुरा कह सकते हैं—उन पर समीक्षा कर सकते हैं—और यदि घर की

चहार दिवारी में बैठकर चौबीसों घंटे केवल भावनाओं मे बहते रहे—स्वप्नों की दुनियाँ को आबाद करते रहे—उमंग चढ आने पर फिर उसी को बरबाद करते रहे तो काम नही चल सकता।" और इसीलिये कमलनयन से बन्धुगुप्त का बोलना तक कतई बन्द हो गया है। परन्तु दोनो मे से एक जब अपनी गर्दन अपराधी की भाँति झुका देता है तो फिर दोनों स्नेह-बंधन में बँध से जाते हैं। यही क्रम परिचय के समय से अभी तक चला आ-रहा है—आशा है, चलता ही रहेगा।

कमलनयन स्थानीय एक साहित्य-संस्था में मुख्य लेखक है और बन्धुगुप्त—आवारा तो नहीं, क्योंकि उसे भी अपने लिए प्रति-दिन तीन पाव आटे को पाने का प्रयत्न करना ही पड़ता है। वह स्थानीय प्रेस का व्यवस्थापक है। हाँ! एक बात तो कहना भूल ही रहा हूँ—कमलनयन और बन्धुगुप्त दोनो ही हिन्दी के कवि, कहानी-लेखक, समालोचक—और न जाने क्या-क्या भी हैं।

× × × ×

उस दिन दोनो के ऑफिस की तातील थी। कमलनयन के आग्रह को न टालकर बन्धुगुप्त ने उस-दिन कमलनयन के घर पर साथ-ही-साथ भोजन किया। बाद को यह प्रोग्राम निश्चय किया गया कि, दो तीन घंटे तो विश्राम कर लिया जाय—उसके बाद 'शिवालय' (भांग की दुकान—जहाँ पिसी-पिसाई भाँग तैयार मिलती है) चला

जाएगा। उसके बाद. हरियाली ने जिस ओर भी संकेत किया—उसी ओर अग्रसर हो जाएँगे। इन्ही विचारों की तल्लीनता में दोनो की आँखे झप भी गईं।

× × × ×

चार बजे तक कमलनयन और बन्धुगुप्त सोते ही रहे। बाद को कमलनयन ने उठकर बन्धुगुप्त को झकझोरते हुए कहा—" हज़रत ! क्या सोते ही रहोगे ? छुट्टी का दिन भी क्या यूं ही तमाम हो जायगा ? " आखिर बन्धुगुप्त भी उठ ही बैठा।

अपने कोट के पॉकेट में से एक सिगरेट निकाल कर जलाते हुए वह बोला—" कमलनयन ! चलो शिवालय चलें। न जाने क्यो आज अच्छा नही लग रहा है—जी भारी-भारी महसूस होता है। "

दोनों ने पास ही रखी हुई सुराही के शीतल जल से अपने-अपने मुँह-हाथ धोए और कपडे पहन कर शिवालय की ओर चल पडे।

+ \+ \+ \+

शिवालय पर भी आज प्यासो की भीड अधिक लगी हुई थी। ज्ञानी, अज्ञानी, बाबूजी, साहूजी आदि सभी का जमवट बढ़ता ही जा-रहा था। सभी अपनी-अपनी प्यास को बुझाने की धुन मे थे। कमलनयन और बन्धुगुप्त भी उक्त पनघट पर आ-पहुंचे। इसी गली में कहलाने वाले धर्मात्माओ के अन्न मे पाले हुए कुछ सांड डकार रहे

थे—कुछ खडे थे—कुछ चहल-कदमी कर रहे थे। एक चिन्ता-मग्न क्षीण शरीर वाला युवक, चिन्ता-सागर मे गोते लगाता हुआ उधर से जा रहा था। एक साँड जो मुफ्त के चरे हुए अनाज से पैदा हुई मस्ती को उपयोग मे करने की सोच रहा था। उक्त चिन्ता-मग्न युवक जब उसी के पास से गुजरा तो उक्त साँड ने अपना सिर हिलाया और अपने सीगो में इस युवक के कपड़ो को उलझा ऊँचा उठाकर फेंकने की तैयारी मे था। युवक इस अकस्मात घटना को समझ नही पाया। तीर की तरह छोडी हुई एक चीख उसके कलेजे से निकल ही गई। पनघट पर खड़े कुछ प्यासे इस घटना के लिए आपस मे काना-फूसी करने लगे—कुछ दुःख प्रकट करने लगे—कुछ आगे बढे—और दो पूँजीपति तो इसे व्यापार का पाँसा ही समझ बैठे एक ने दूसरे से कहा—

"कई शाब ! यो आदमी चित गिरेगो या पुट ?"

दूसरे ने फुर्ती से कहा—"चित को मोटो तै हुओ-पच्चीस-पच्चीस का भाव मे पचास रुपया।"

प्रथम ने स्वीकार किया और साँड ने उस युवक को उछाल फेंका। युवक उल्टे मुँह जमीन पर आ गिरा। जुआरी लगाए हुए रुपयों को हार गया।

कमलनयन और बन्धुगुप्त भी अपनी-अपनी प्यास बुझाकर उक्त खेल-तमाशे को देख रहे थे। खेल समाप्त होने पर बन्धुगुप्त उस साँड से उलझने के लिए आगे बढ़ा

ही था कि कमलनयन ने उसे ऐसा करने से रोक लिया और वे दोनों आगे बढे।

शिवालय से विदा होने पर कमलनयन ने बन्धुगुप्त से कहा—"चलो! वर्माजी के घर होते चलें।"

वर्माजी कमलनयन के ऑफिस ही में कार्य करते हैं और इसीलिए दोनों का परिचय भी है। बन्धुगुप्त वैसे वर्माजी से परिचित तो है—परन्तु घनिष्ट नहीं? बन्धुगुप्त के स्वीकार करते ही दोनो वर्माजी के घर की ओर रवाना हुए। वर्माजी का घर आया। कमलनयन ने पुकारा—"वर्माजी हैं क्या?"

वर्माजी ने नजाकत भरे स्वरो में आह्वान करते हुए कहा—"आइए—तशरीफ लाइए?"

कमलनयन और बन्धुगुप्त कमरे में गए और सजी हुई कुर्सियो पर बैठ गए—साथ-ही-साथ वर्माजी भी?

वर्माजी ने रंग बदला। कहने लगे—"कमलनयन! भाई तुम तो इस झोंपडी में कई बार आ चुके हो। परन्तु सौभाग्य है मेरा जो आज भाई-बन्धु गुप्तजी भी यहाँ आ-पहुंचते इस कुटिया में?"

बन्धुगुप्त ने सिगरेट और मॉचिस आगे बढाते हुए कहा—"धूम्रपान कीजिएगा वर्माजी?"

वर्माजी कहने लगे—"भाई! जान बख्शो—कहीं श्रीमतीजी सुन लेंगी तो घर में रहना मुश्किल हो जाएगा?"

बन्धुगुप्त हँस दिया और एक सिगरेट जला खुद ही

धूम्रपान करने लगा ?

कमलनयन बहुत देर तक चुप रहने के बाद बोला—"वर्माजी कहीं बाहर चलोगे घूमने ? बन्धुगुप्त और हम जा-रहे थे पार्क। सोचा—साथ ही तुम्हे भी लेते चले ?"

वर्माजी चलने को तैयार होगए। कमलनयन, बन्धुगुप्त और वर्माजी तीनो ही पार्क की ओर रवाना हुए ?

+ + +

कमलनयन ने साहित्य की चर्चा छेड़ते हुए मार्ग मे कहना शुरु किया—"बन्धुगुप्त ! मुझे तो 'दिनकर' की कविताएँ बहुत अच्छी लगती है—

"माया के मोहक वन की—
क्या कहूँ कहानी परदेशी !
यहाँ मेनका की चितवन पर,
मत ललचाना परदेशी !"

कितनी सुन्दर पंक्तियाँ हैं !"

बन्धुगुप्त अभी-तक चुप ही था। जरा मज़े में आकर उसने कहना शुरू किया—"तुमने 'नवीन' की रचनाएँ पढी है कमलनयन !—

"तुम युग-युग की पहिचानी-सी !
हो कौन सुमुखि ! अनजानी-सी ?
लम्बा रिश्ता है क्या कोई,
जो देख तुम्हे आँखे रोई;

जग नया-नया लगता है पर;
तुम तो बहुत पुरानी-सी !
तुम युग-युग की पहिचानी-सी !"

कमलनयन कविवर 'नवीन' की उक्त पंक्तियाँ चाव से सुन रहा था। दाद देते हुए बोला—"साजन ! तुम हो गए पराए ! और भी अधिक मधुर रचना है।"

वर्माजी अभी-तक मौन ही चले आरहे थे। संकोच तोड़ते हुए वे बोले—"आप दोनो ने युग-प्रवर्तक कवि" निराला की पुस्तकें पढ़ी हैं ?

बन्धुगुप्त तेजी से कहने लगा—"जी हाँ ! 'इलाहाबाद के पथ-पर—वह तोड़ती पत्थर !' उनकी सुन्दर कविता है।"

कमलनयन और बन्धुगुप्त की मुलाकात जहाँ रोज ही होती है—वह स्थान भी आगया। तीनो ने इसी बाजार मे मटक-मटक कर प्रत्येक विषय पर व्याख्यान देते रहने वाले एक पान वाले के यहाँ पान खाए—और आगे बढ़े।

अब विषय कहानियो का शुरू हुआ। वर्माजी बोले—"कहानियाँ आपको प्रेमचन्द, 'प्रसाद', 'उग्र,' जैनेन्द्र, सुदर्शन, कौशिक, यशपाल किसकी अच्छी लगती हैं ?"

बन्धु गुप्त ने जरा दर्दीले स्वर मे जवाब दिया—"वैसे कहानियाँ तो करीब-करीब इन सभी की पढ चुका हूँ। इन दिनो शरद-साहित्य का अध्ययन कर रहा हूँ। फिर भी इतना तो कहूँगा ही कि, नारी के चरित्र-चित्रण को जितना शरद बाबू ने निभाया है—शायद दूसरा कोई न निभासके।"

टाउन-हाल आ पहुँचा। इसी के बगीचे मे कुछ सज्जन-कुछ हरिजन बैठे विश्राम कर रहे थे। भाँग की हरियाली बन्धुगुप्त और कमलनयन दोनों ही पर सवार हो चुकी थी। बन्धुगुप्त ने विषय को बदलते हुए कहना शुरू किया—"कमलनयन! देखो, बजरंगबली के मन्दिर के पास वाली प्याऊ पर कितने ही पथिक अपनी प्यास बुझा रहे है। सच पूछो तो इस कुएं का जल भी गंगा-जमुना से कम निर्मल नही है। चलो—चलकर थोडा-सा जल ही पी लिया जाय।"

कमलनयन वर्माजी सहित उसी ओर आगे बढा। अपनी-अपनी तृष्णाओ की पूर्ति कर लेने पर तीनो ने "हर-हर भोले" कर भवन मे प्रवेश कर नमन किया—साथ ही साथ बजरंगबली के बाने को भी।

वर्माजी बाहर सडक पर आने पर बोले—"अच्छा अब मुझे इजाजत दीजिएगा।

कमलनयन बोला—"हाँ! आपको तो मै अब अधिक समय तक रोक नहीं सकूँगा। आख़िर आपकी बहिन को मोतीझरा जो निकला है। पूरी-पूरी देख-रेख रखना चाहिए। चाहो तो कुछ दिनों की छुट्टियाँ ले डालो और बहिन के स्वास्थ्य की ओर लेतलाली त्यागकर गौर करो!"

बन्धुगुप्त अभी तक चुप ही था। कहने लगा—"हाँ भाई! बहिन का स्वास्थ्य जल्द ही चगा कर डालो। मुझ जैसे व्यक्ति के जीवन के तो बीस बसन्त और पतझर बीत

गए। परन्तु . .. । काश बहिन होती तो उसे भी कवियित्री बनाकर ही छोडता। परन्तु क्या किया जाय। भाग्य के विधान ने मुझे बहिन दी ही नही। फिर भी गम गलत करने के लिए किसी न किसी को अपनी बहिन मान ही लेता हूँ।

वर्माजी ने कमलनयन और बन्धुगुप्त से अभिवादन किया और अपने घर की ओर लौट पडे।

+ + + +

वर्माजी को विदाकर कमलनयन और बन्धुगुप्त पार्क की ओर बढे। "कलकत्ते वाले का आइसक्रीम बरफ एक पैसा—दो पैसा—एक आना" की ध्वनि में बरफवाले ने पार्क के मुख्य द्वार पर खडे-खडे उन दोनो के आगमन की प्रसन्नता दर्शाई। कमलनयन और बन्धुगुप्त फूलों की क्यारियो की ओर बढे। कमलनयन बन्धुगुप्त से कहने लगा—"देखो! प्रकृति की लीला भी कितनी विचित्र है।-फूलो मे भी मनुष्य के रूप-रग की झलक दिखाई देती है। शकर, शिक्षार्थी, वीरेश्वर आदि—कार्टुनिस्टि की स्मृति हो आती है। यह देखो! इस फूल मे हिटलर का रूप–इसमे चर्चिल का–इसमे तो बापू के प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे है।"

बन्धुगुप्त बोला—"सच कमल!" और वे दोनो आगे बढकर बाँसो के झुरमटो के करीब आ-पहुँचे। कुछ समय तक दोनो ही प्रकृति के रूप को निरखते रहे। चाँद धीरे-धीरे निकला आ-रहा था। अमराई की किसी डाली पर बैठी

कोयल अलाप रही थी—पीउ .पीउ . पीऊ। उधर किसी के बंगले पर बजते हुए रिकार्ड की ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी—" मै तो धोखे से देखन लागी उधर—मोपे डार दई सारी रंग की गगर।"

कमलनयन ने गम्भीर मुद्रा तोडते हुए कहा—" बन्धुगुप्त ! चुप क्यों हो ? कुछ कहो न !"

बन्धुगुप्त कहने लगा—"उग्र"जी की याद आ-रही है कमल ! व यहाँ होते तो जीवन इतना नीरस कदापि नही लगता और न शिवालय ही रोज-रोज जाना पड़ता। कम-से-कम उनके देव-मन्दिर शिवालय मे विजयाभवानी तो नियमित रूप से मिलती रहती !"

अचानक कमलनयन की नजर एक बांस की ओर गई। जिस पर दो नाम लिखे हुए थे। वह उन्हें देखकर बोला—" बन्धुगुप्त ! इन पुरातन स्मृतियों की ओर ज़रा झाँको तो। कुछ याद है—यह किसकी स्मृतियो के मज़ार हैं ?"

बन्धुगुप्त ने फुर्ती से उस बाँस की ओर देखा। जिस पर लिखा हुआ था—"बन्धुगुप्त" "हरि"। बन्धुगुप्त को मानो किसी काली नागिन ने डस लिया हो। वह तमक कर बोला—" पुरानी बातो की उधेड़बुन कर तुमने अच्छा नहीं किया कमल ! मिट्टी की दुनिया पर विश्वास करते हैं पागल !" और उसकी आँखों से दो गर्म-गर्म आँसू निकलकर जमीन पर आ-गिरे।

+ +

हरि को पाकर बन्धुगुप्त अपने जीवन की पगडंडी को तय करता जा-रहा था। इसी पार्क मे दोनो कभी-कभी आ मिलते थे और देश को गुलामी की हथकड़ियों से छुडाने के लिए आपस मे नित्य नए अरमानो से भरी नई-नई स्कीमे बनाया करते थे। परन्तु मन की एक भी बात पूरी न हो पाई। स्वाधीनता-दिवस पर हरि बन्दूको का निशाना बना दिया गया। बन्धुगुप्त का साथी साथ छोडकर चल बसा। उसके बाद ही कमलनयन अचानक बन्धुगुप्त के जीवन मे आया और उसीने अपने हाथो ही से हरि के शहीद होने के दिन ही उसका रूप इस पार्क के इस बाँस में अङ्कित कर दिया। जो आज भी सघन-छाया मे खड़ा-खडा मुस्कराता-सा प्रतीत होता है।

—महेशशरण जौहरी 'ललित'

गंभरि हास्य की मजेदार कहानी—

गलत फहमी

पड़ोस के मकान से एक चीख सुनाई दी। फिर किसी के रोने की आवाज आई। और फिर बाहर आकर एक लडका चिल्लाया—' हाय! मेरी माँ मर गई। '

दिन काफी चढ चुका था। लोग काम धन्धे से लग रहे थे। सडक पर से गुजरनेवालों ने लडके के ये शब्द सुने और उनमें से कुछ पर पाला पड़गया। वे उसी मोहल्ले में रहते थे और उस लडके के पिता को अच्छी तरह से पहिचानते थे।

बेचारे काम पर जाने वाले थे। पर अब वापिस घर लौटे और कपडे उतार कन्धे पर धोती डाल नंगे सिर हो उस लड़के के मकान के सामने आ बैठे।

एक दो तीन चार. .धीरे-धीरे इन नंगे सिरवालो की वहाँ काफी भीड जम गई।

उस लडके का बाप बाहर आया तो देखकर दंग रह गया कि सामनेवाले लाला की बीमार बूढी चल बसी। वह भी कपडे उतार, नंगे सिर हो उन्हीं लोगों के बीच जा बैठा। लोगों में इसी सिलसिले की बातचीत हो रही थी। लालाजी के परिवार से घनिष्टता दिखलाने की गरज से आँखो में आँसू लाये ये भी बोले—‘ बिचारी बडी नेक स्त्री थी। ’ लोगो में से अनेक बोल उठे—‘ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे।’

ये फिर बोले—‘ वह पतिव्रता थी जो पति के कधो चढ स्वर्ग सिधारी। ’

लोगों में मे कुछने कहा—‘ ईश्वर उन्हें वैकुठवास दे।’

फिर थोडी देर सब शांत।

पाँच दस पँद्रह बीस धीरे-धीरे आधा घंटा होगया।

लोगो ने अन्यमनस्क भाव से पूछा—‘और कितनी देर है ? ’

लडके के पिताने उत्तर दिया—‘ भइ, सामान लाने वाले जानें। ’

फिर सब चुप।

आधा घंटा ..घंटा ..और डेढ़ घंटा होगया

लोगों में कुस-फुस होने लगी।

ये बोले—'मैं अभी लालाजी से दरयाफ्त करके आता हूँ।'

सौभाग्य से या दुर्भाग्य से लालाजी शौच मुखमार्जन की तैयारी मे थे। धोती का आधा हिस्सा सिर को लपेटे हाथ मे लोटा लिये जाने किस विचार में वे खड़े थे।

इन्होंने आँखों में आँसू ला लालाजी से कहा—'ज्यादा देर करना ठीक नही। अब हमको चल देना चाहिये।'

गभीर हो लालाजी बोले—'हाँ, चलो; मैं आता ही हूँ।'

ये कहने लगे—'घी चदन इत्यादि का इतजाम भी अभी करना होगा।'

लालाजी बोले—'उसकी क्या आवश्यकता है।'

ये बोले—'वाह, आप लोग यदि घी, चंदन काम मे न लाएँगे तो क्या हम लोग उसका उपयोग करेंगे?'

लालाजी चौंके। फिर भी उन्होने कहा—'भाई, सब गरीबा-गरीबी में होना चाहिए। लड़ाई का जमाना है और फिर गया हुआ वापिस थोड़े ही आता है।'

ये बोले—'नही साहब, ऐसे वक्त तो दिल खोलकर पैसा सर्फ करना चाहिए। यह सब उन्हीं माँ साहब की पुण्याई का ही तो फल है।'

आश्चर्य से लालाजी ने पूछा—'माँ साहब की? कौनसी माँ साहब की?'

इन्होने कहा—'मैं आपकी स्वर्गीय धर्मपत्नी के बारे

में कह रहा हूँ।'

'स्वर्गीय ?—क्रोध से काँपते हुए लालाजी बोले।

'हाँ जी, जो अभी-अभी ..'

क्रोधित लालाजी ने पानी से भरा हुआ लोटा बाबूसाहब के मुँह पर दे मारा।

'मेरी स्त्री को मारने चला मरे तेरी स्त्री.... ..रामराम, दूसरे के घर जाकर अपशकुन करने आया जा निकल.. निकल और अगर इस तरह नशापानी करना हो तो अंदर से कमरे की कुंडी चढा लिया कर ..समझा ? निकल ।'

लोहू-लुहान बाबूसाहब वहाँ से लौटे तो सामने मिला उनका लड़का !

रोता हुआ बोला—'बाबूजी ! मेरी माँ मरगई।'

बाबूजी बोले—'अबे, क्या बकता है ? तेरी माँ तो घर में बैठी—चाय बना रही है।'

लड़के ने कहा—'हाँ बाबूजी ! उसने ही मुझ से कहा कि तुम्हारे बाबूजी नहीं आए। मैं चिल्ला-चिल्ला कर मरगई।'

सब हँस पड़े।

बाबूजी लड़के को फटकारते हुए अंदर ले गए।

बाहर बैठे हुए लोग आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखने लगे।

चाय पीकर बाबूजी लौटे तो एक ने साहस कर पूछा—'क्या उस लड़के की माँ वास्तव में अभी मरी नहीं है ?'

बाबूजी क्रोधित हो बोले—'अजी, आप कहते क्या है? कहने वाले साले की जबान खींचलूँ।'

लोगों ने अपनी कैफियत पेश की।

मुस्कराकर बाबूसाहब ने कहा—'गलती हुई। क्षमा करें! बात यह है कि यह लडका हाफमैड यानी अर्ध पागल है। नींद में चीख उठता है। कभी रोने लग जाता है। कभी उठकर भागने लगता है और कभी इस तरह बेवकूफ की भाँति बड़-बडाता है। शायद यह इसी का काम है। मैं आप सब लोगो का कृतज्ञ हूँ।

—श्रीनिवास जोशी बी. ए.

चित्र

" लमेछ मुझे भी तछबील बनाना छिखादो ना ! "

यों कहकर सात वर्ष की बालिका किरण ने रमेश को झकझोर दिया। रमेश को एकदम गुस्सा आ गया। उसके बनाये हुए घोडे के कान बिगड गये हिलाने से। उसने तपाक से उठकर किरण को एक चाँटा मार दिया। बोला—

" ले सीख, कलम पकडना तो आता नहीं तस्वीर सीखेगी, फिर गर्व भरे स्वर में बोला जरा मेरे बराबर तो हो जा। मालूम है ग्यारह वर्ष का हूँ मैं, ग्यारह। "

फिर कुर्सी पर बैठ कर घोड़ा बनाने में निमग्न होगया। किरण पास खड़ी सिसकियाँ भरती जाती और तृषित नेत्रों से तस्वीर की ओर देखती जाती थी।

रमेश चित्र खतम करके बोला ' किरण देख तो कितना अच्छा घोड़ा और आम बना है, अरे रोने लगी ? पगली चुप हो जा। चल तुझे सिखाऊँ। चुप-चुप, नही तो नही सिखाऊँगा। चुप हो चुप। '

दोनों जाकर कुर्सी पर बैठ गये। किरण ने पेन्सिल और रमेश ने उसका हाथ पकड़ लिया।

" क्या बनायेगी ? "

" चूआ "—

"ले ऐसा कर, अरे अरे ऐसा कर। फिर उधर ले गई ?"

किरण चूहा बना कागज़ लेकर माँ को दिखाने चली। रोम रोम हर्ष से पुलकित हो रहा था।

" माँ देको मैंने कितना अच्छा चूआ बनाया है। "

" अरे तेरी आँखें इतनी लाल क्यो है ?

हर्ष-भरे आँसू फिर छलक आये। मीठे उपालम्भ से बोली " लमेछ ने माला "।

" मारा ? क्यों मारा ??

" तछवील छिकाने को कहा तो। "

" बुला तो उसे। "

किरण सहमी-सी गई और रमेश को बुला लाई।

" रमेश, तस्वीर बनाना तो नहीं सिखाया ऊपर से मार दिया। क्यो ? चल इसकी सजा यह कि रोज इसे तस्वीर बनाना सिखाया कर। "

रमेश ने स्वीकार सूचक सिर हिला दिया।

+ \+ \+ \+

रमेश व किरण के परिवार में अत्यन्त घनिष्टता थी। गृहलक्ष्मियें अपने बच्चों की तरह एक दूसरे के बच्चों को समझती थीं। उनके डाँटने फटकारने से उनके प्रेम में कोई अंतर नहीं आता था। वे दोनों जब गृह-कार्य से निपट कर आपस में बातें करने बैठती थीं तब प्राय: रमेश व किरण के ही बारे मे हुआ करती थीं वे बातें।

दोनों बच्चे जब आपस में खेलते रहते तब वे उनके मधुर प्रेम की आलोचना किया करतीं। उनके व्याह के बारे में मधुर कल्पना किया करती थीं।

किरण धीरे-धीरे ग्यारह वर्ष की हो गई। उसकी दादी की यही इच्छा थी कि किसी तरह किरण का व्याह उनके सामने हो जाय। काफी वय हो गई थी उनकी। वे हमेशा बीमार रहा करती थीं। अपने लडके से अनुरोध किया करती थी कि किरण का व्याह उनके जीते जी हो जाय। उनकी दृष्टि मे किरण बड़ी भी तो हो गई थी।

संयोग से उसी समय एक वर भी मिल गया। सुशील, सुन्दर, पढता था। यद्यपि किरण के पिता की इच्छा अभी शादी करने की लेशमात्र भी नही थी, पर वे माँ का अनुरोध न टाल सके। तिसपर सकट यह कि उनकी माँ वर के पिता महोदय को वचन दे चुकीं थीं।

रमेश व किरण की माँ की बिलकुल इच्छा नही थी कि यह व्याह हो। वे इन दोनो का आपस में व्याह करना चाहती थीं। उनके सारे स्वप्न धूल में मिल रहे थे। दोनो ने अपने-अपने पति मे कहा। पर उन दिनो गर्मी की छुट्टी

थी। रमेश व उसके पिता सैर करने गये थे, बाहर किसी गाँव मे। दोनों के पिताओं में इतनी घनिष्टता नहीं थी। जितनी की माताओं में। दोनों ने अपने पतियों की इच्छा का अनुभव किया, पर एक दूसरे को लिखने मे संकोच होता था। इधर दादी जल्दी मचाये थीं।

सारी परिस्थितियों ने मिलकर अंत मे किरण का ब्याह कर ही दिया।

धीरे-धीरे दिन व्यतीत हो रहे थे कि एक दिन दादी बहुत बीमार पड़ गई। ठीक उसी समय किरण के श्वसुरालय से समाचार आये कि उसके दूल्हा बहुत बीमार हैं। किरण के पिता बड़ी खींचतान में पड़ गये कि क्या करें? किरण को पहुँचायें या खुद जाये। इधर माँ की तबियत क्षण प्रति क्षण निराशाजनक होती जा रही थी। थोड़े समय बाद दादी उसके पिता की खींचतान को मिटाकर परलोकगामिनी हुई। उसके पिता का जाना न हो सका।

आखिर माँ ही थीं, किरण के पिता को बहुत दुःख हुआ। अचानक किरण के नौजवान पति उसे तपस्विनी बना कर दादी के पथगामी हुए। उसकी माँ यह ठेस सहन न कर सकीं और बीमार रहने लगीं। पिता भी गृहभार वहन करने लायक नहीं रहे। अपनी एकलौती संतान की यह दुर्दशा उनसे नही सही गई। वे अपनी जरासी भूल पर पश्चाताप करने लगे। और किरण? किरण को न तो दुःख ही हुआ और न हर्ष ही, अभी बालिका ही तो है वह। हाँ जब उसकी चूडियाँ तोड़ी गई थी तब अवश्य वह चीख

मारकर रो दी थी, जिसे सुनकर उसकी माँ के हृदय मे तीर-सा लगा था।

उनके परिवार पर वज्राघात हुआ। डेढ़ साल बाद उसकी माँ और उसके पाँच साल बाद उसके पिता उसे अनाथिनी बनाकर चल दिये, किरण की जीवन समस्या को बिना हल किये।

किरण पर लगातार कई वर्षों से दुःख के पहाड़ टूटते जा रहे हैं। वह अपने को अनाथ पाकर घबरा जाती है। पर है साहसी रमणी, घबराकर कुछ अनुचित नहीं करती।

× × ×

रमेश व किरण दोनों का यौवन लहरा रहा है।

रमेश शुरू से ही कला-प्रिय है। आजकल साहित्य उसकी नई प्रवृत्ति है। संग रहने से ये सभी गुण किरण में भी विद्यमान है। दोनों अनजाने एक दूसरे की ओर खिंचते चले आ रहे हैं। पर उन्हें इसका ज्ञान नहीं है। कला प्रेम ही उन दोनो का प्रेम है। भूल रहते हैं उसी में। किरण जब कला की साधना करने बैठती है तब अपने सारे दुःख भूल जाती है। उसका अधिक समय इन्हीं कामो में व्यतीत होता है। सगीत व साहित्य से उसे विशेष प्रेम है। वह अपने हृदय के उद्‌गार साहित्य द्वारा ही व्यक्त कर सकती है। संगीत से हृदय की वेदना।

उसके पिता के हाथ की रही सही पूंजी भी—धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। किरण को इसकी चिन्ता है।

उसकी जीविका किस तरह चलेगी ? रमेश को भी चिन्ता लगी है।

"तुम्हारे हाथ मे कला है किरण। चिन्ता क्यों करती हो ?"

"मैं अपनी कला को जीविका का साधन नही बनाना चाहती रमेश !"

"आखिर इस तरह कब तक चलेगा ? बाबूजी की जो कुछ भी संपत्ति थी समाप्त हो चली।"

"हुँ।"

"मै तो चाहता हूँ तुम मेरे साथ रहो, किरण ! मै तुम्हारे लिये सब कुछ सहने को तैयार हूँ।"

"नहीं रमेश मैं अपने इस लोक को बिगाड़ना नही चाहती। ऐसा करने से समाज हमपर अँगुली उठायेगा। मैं तुम्हारे हृदय की गति का अनुभव कर रही हूँ, और मेरे हृदय की गति भी उसी ओर बह रही है, जानते हो ?"

ओह ! मानो रमेश के श्रवण युग-युग से यही एक बात सुनने को पिपासित थे। ऐसे समय मे भी उसका शरीर एक बारगी रोमांचित हो उठा। तो क्या सचमुच किरण मुझे चाहती है ? बस मुझे और कुछ नही चाहिये। शान्त है, मेरा अंतस्थल। उस समय अतीव शान्ति का अनुभव हुआ उसे। और किरण दूसरी ओर मुँह करके अश्रुधार से हृदय की वेदना कम करने लगी। रमेश के विषय मे सोचती है। उसका उसमे क्या दोष ? प्रेम करना पाप नहीं है। मेरे लिये वह अपने जीवन को बलिदान की वेदी पर चढ़ाये हुए

है । ऐसे त्यागी की अगर मैं पूजा करती हूं। तो मेरा क्या दोष है ? नहीं ! नहीं ! ! मैं सर्वथा निर्दोष हूं । मैं उसे जैसा बन पड़ेगा शान्त रखूँगी ।

रमेश मानो समाधिस्थ हो रहा था । अचानक समाधि टूटी, बोला—

“ किरण ! संगीत, साहित्य और चित्रकारी इनमें तुम यथेष्ट निपुण हो । क्यों न इससे कुछ पैदा करके कला की उन्नति की जाय । जो कुछ आय हो उसे गुजर जितना मेहनत का फल समझकर खर्च करो और जो कुछ बचे उसे फिर कला की उन्नति के लिये खर्च करो । ”

“ हाँ ऐसा ही ठीक होगा । ”

“ तो लड़कियों को इकट्ठा करके उन्हें जो जो पसंद हो सिखाया करो । उनसे जो चंदा इकट्ठा होगा उसमें से अपनी गुजर करो और कला की सेवा । ”

किरण के समय का सदुपयोग होने लगा । उसकी साधना सफल होने लगी । शहर की लड़कियाँ उसके पास आ-आकर इच्छित कलायें सीखने लगी । उसका घर कला-मंदिर हो गया । उसके एकान्त जीवन का भी अंत आ गया ।

किरण नित्य प्रति संध्या समय तुलसी के सामने दीप रखकर हाथ जोड़ प्रार्थना करती थी कि “ माँ मुझे मन, वचन व कर्म से शुद्ध रखना । ” फिर दिनभर की जो कुछ भी बुराई उससे हो गई हो उसे याद करके पश्चाताप करती व फिर न हो ऐसा प्रयत्न करती थी ।

आज भी संध्या समय है । दीप रखकर हाथ जोड़े

ध्यान-मग्न खड़ी थी कि रमेश आ खड़ा हुआ। किरण का ध्यान उधर नहीं गया। हाथ जोड़े खड़ी रही।

रमेश विस्मृत-सा हो गया। किरण उस समय पवित्रता व सौंदर्य की देवी जान पड़ रही थी। सफेद साड़ी में उसका कुन्द कली-सा शरीर, रूखे खुले केश। ध्यान-मग्नता। दीपक का मन्द-मन्द प्रकाश उसके चेहरे पर पड़ रहा था। उसमें उसकी उभरी हुई आँखे, लम्बी-सी नाक, ये सब एकदम रमेश के अंतस्थल को स्पर्श कर गईं। वह वही का वहीं ठिठककर खड़ा हो गया और निहारता रहा उस सौंदर्यमयी देवी को।

किरण-दीप रखकर उठी फिर भी उसने रमेश को नही देखा। आज उसका मन कुछ भारी-सा था। सोचा सितार से गाने मे संभव है हृदय के स्फुलिंग की दाह कम हो।

सितार उठाया और उसी तुलसी वाले चबूतरे पर आकर बैठ गई। तारों पर विद्युत गति से पतली-पतली सुन्दर अंगुलियाँ दौड़ने लगी। ज़रा देर चुप रहकर फिर गला साफ़ किया और अत्यन्त करुण स्वर मे गाना छेड़ा—

देख देख कर रोई।
कठिन डगर है, जीवन बाती,
सिहर सिहर, बुझती रह जाती।
नैया मोरी डगमग डोले,
लगता अब खोई मैं खोई।

जिया डराये मन अकुलाये,
शून्य राह की जो सुधि आये;
मैं पथ चारिणि अगम डगर की
साथ न मेरे कोई।

" बस ! किरण बस !! आखिर कब तक इस तपस्या के दाह में दग्ध हुआ करोगी ? मुझसे तुम्हारी यह साधना देखी नहीं जाती। "

किरण काँप उठी। उसके हाथ से सितार गिरकर झनझना उठा। धक से हो गया उसका कलेजा। वह अपनी आतरिक वेदना रमेश पर प्रगट नहीं होने देना चाहती थी। जानती थी कि मेरे दुःख से रमेश के संयम का बाँध टूट जायगा। रो पड़ेगा वह और उसमें बह जाऊँगी मैं। अंतिम पद गाते समय उसका गला भर आया, आँसू छलक आये थे। जल्दी से उसने आँखें पोंछ लीं। बोली—

" रमेश तिरस्कार के जीवन से तपस्या कहीं अच्छी है। हमारे प्रेम में पवित्रता है। आत्मा एक है और रहेगी। क्षणिक आवेग में आकर हम समाज की दृष्टि में तिरस्कृत क्यों हों ? दुनियाँ हमसे घृणा करने लगेगी।

रमेश की आँखें भी भर आईं। क्या करूँ किरण ? हृदय, हृदय की वेदना देखता है तो तिलमिला उठता है। कहो मैं तुम्हें किस तरह सुखी देख सकता हूँ। जीवन की साध है कि तुम्हें सुखी देखूँ। मैं तुम्हें सुखी देखने के लिये सब कुछ कर सकता हूँ किरण।

" शान्त होओ रमेश ! जानती हूँ तुम मुझे हृदय से चाहते हो। सच्चे प्रेम में शक्ति होती है कि सब कुछ उत्सर्ग कर सके। पर, जानते हो ? मैं सुखी हूँ यह जानकर कि कोई मुझे हृदय-से चाहता है। मुझे परम शान्ति है और यही मेरा सुख है।"

कहते कहते उसके मुँह पर गम्भीरता छा गई। एक स्वर्गीय अभा झलक गई उसके चेहरे पर।

" ओह किरण ! तुम देवी हो। मैं तुम्हें पथ-भ्रान्त-कर पतन की ओर घसीट रहा था। पर तुमने मुझे सचेत कर दिया। मुझे आज कितनी शान्ति मिली ? मैं हमेशा तुम्हारे बारे में सोचा करता था कि तुम चिर दुखी हो। अब पता चला कि तुम लौकिक सुख की उतनी कीमत नहीं करतीं। हृदय की भावनाओं की उपासिका हो।"

रमेश एक शीतल दाह लेकर चल दिया। किरण ने एक नन्दा नाम की अनाथ लडकी को अपने साथ रख लिया था उसने आकर खबर दी कि लड़कियें आ गई तो वह भी उठकर चल दी।

+ + +

" किरण दीदी ! ओ किरण दीदी !! रमेश भैया मोटर से टकरा गये। उनके सिर में बहुत जोर से चोट लगी है।"

रमेश के घर नन्दा खेलने गई थी उसने लौटकर कहा। किरण हतप्रभ्-सी हो गई थोड़ी देर पश्चात् एक अज्ञात आशका से सिहर उठी। जल्दी से काम आदि से

निपट कर रमेश के घर पहुँची। रमेश पलंग पर बेहोश पड़ा था। उसके सिर कंधे में पट्टी बंधी थी।

किरण देखकर कांप उठी। किसी तरह थोड़ी देर माँ से बात-चीत करके घर लौट आई। उसे शरीर में हडफूटन सी मालूम दी। चुपचाप ओढकर सो गई।

नींद खुलने पर उसे खूब जोर का बुखार चढा था। नन्दा ने पूछा—"बुखार चढ गया ?"

किरण चुपचाप पडी रही। उसका जी चाहता था कोई उससे बोलचाल न करे।

छ. सात रोज हो गये। बुखार बराबर चढ़ा ही है। डाक्टर का कहना है कि मोतीझिरा (टायफाइड) है।

उधर रमेश की तबियत कुछ ठीक है। जब सुनता है कि किरण बहुत बीमार है तो मन चाहता है उठकर एक बार देख आये उसे। परन्तु डाक्टर उठकर बैठने भी नहीं देते और उसमें इतनी शक्ति भी कहाँ जो इतनी दूर जा सके।

इक्कीस दिन हो गये किरण उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। आज डाक्टर निराश हो गये। बचने की आशा नहीं रही। नन्दा अकेले घबड़ाती थी। क्या करे कुछ समझ में नहीं आता था। सोचा चलकर रमेश से ही कहूं।

"भैया, भैया, किरण दीदी बहुत बीमार हैं। डाक्टर कह रहे थे अब वे नहीं बचेंगी।"

रमेश को काठ मार गया। एकबार जोर से "किरण" पुकार कर एकदम जोर से भागा। घर के लोग पीछे से पकड़ने दौड़े।

उसका सिर चक्कर खाने लगा, पर वह भागता ही रहा। रास्ते में किरण के घर के दरवाजे से टकराकर उसके घाव में फिर से चोट आ गई। खून तीव्र गति से बहने लगा।

इधर किरण के प्राण भी आकुल से पार्थिव शरीर व सारहीन संसार को त्यागने की तैयारी कर रहे थे।

रमेश रुका नही। किरण के पास आकर गिर पड़ा और उसी समय दोनों की आत्माएँ अमर-प्रेम के आदर्श को रखकर अनन्त में विलीन हो गईं।......

+ + +

संध्या समय है। भगवान भास्कर अस्ताचल की ओर अविराम चले जा रहे हैं। सघन वृक्ष व पर्वत श्रेणियाँ उन्हें छिपाने मे और सहायता दे रही है। लाल-लाल किरणें अभी भी पृथ्वी के मोह में उलझी उसे छोड़ने की अनिच्छा सी प्रगट कर रही हैं।

इसी समय किरण व रमेश के शव को लाल-लाल अग्नि की लपटें भस्मीभूत करने का प्रयत्न कर रही है। इधर उधर लहर खा खाकर अपनी भस्म करने की व्यग्रता जता रही हैं। किरणें उनके ऊपर उनका पवित्र प्रेम देखकर धीरे-धीरे गंभीरता धारण करती जा रही हैं। उन्हें भी होश आया और वे भी चल पड़ीं बावली-सी अपने देव में मिल जाने को।

किरण अपने देव मे खोगई। किरण और रमेश आपस में खोगये। इधर सूर्यास्त होगया। इसी बेला में इनके

जीवन का भी सूर्य अस्त होगया ।

दोनो को वैसे देखकर शायद दुनिया घृणा से मुहँ फेर लेती, पर अब श्रद्धा मे सिर झुकाती है । ‘ चिता ’ ने दिखा दिया कि प्रेमी पागल कैसे होते है ।

—सुश्री कमलादेवी वर्मा ‘विशारत’

मध्ययुगीन राजपूती वीरता का सजीव चित्र
खींचने वाली प्रभावक एवं रोमांचक कहानी

ज्योत्स्ना

“ कमीने ! पाजी ! ! कुत्ते ! ! ! ”

और सरदार अमरसिंह की आवाज गूँज उठी । जीवन मे सब से प्रथम बार ही आज उन्होने धोखा खाया था । इस आवाज़ के साथ ही उनका वज्र-सा स्वर अपने कुछ सिपाहियों को ललकार उठा ।

“ वीरो ! जीवन का मूल्य कुछ नही है । जीवन एक ऐसा खिलौना है जो यदि बालक के खेलने मे टूट जाय तो बालक को इसका दुख नहीं होता, क्योंकि वह खिलौना उसके खेलने में टूटा है । ”

" तुम वीर हो। हम सब भी तो जान से खेलते हैं—और अगर इस खेल में जान भी चली जाय तो हमें खुश होना चाहिये। देश की स्वतंत्रता के आगे इस तुच्छ जीवन का मूल्य आँकना सचमुच स्वतंत्रता का उपहास करना है।"

कहते-कहते सरदार का गला भर आया। वे एक क्षण के लिए रुक गए।

और इसी एक क्षण में पचासों तलवारें खिंच गईं। घमासान युद्ध होने लगा। जीवन का मूल्य तलवार के वारों से आँका जाने लगा।

और वे फिर बोले, " अग्नि और फ़ौलाद के बने वीरो! तुम देश की शान हो—आन हो—तुम उसके प्यारे हो। देखना कहीं इस प्यार को केवल दुलार ही नहीं रह जाने देना। यही समय है अपने प्यारे देश को उसके प्यार के बदला देने का। देखना! कहीं राजपूतानियाँ तुम्हारे सीने के बजाय तुम्हारी पीठों पर घाव न देखें, अन्यथा वे तुम्हारा मुख देखना मौत से भी हेच समझेंगीं।"

जोश बढ़ रहा था। दोनों ओर के सिपाही जान पर खेल कर युद्ध कर रहे थे, किन्तु एक ओर कुटिल नीति थी और दूसरी ओर था अपनी आन और देश की स्वतंत्रता बचाये रखने का प्रयत्न।

[२]

बात बहुत दिनों से चली आ रही है। दो पास-पास के ठिकानों में पीढ़ियों से बैर चला आ रहा है और इसी बैर की पुष्टि के लिए दोनों पड़ौसी सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

किन्तु सरदार अमरसिंह को उस दिन सचमुच ही आश्चर्य हुआ जब उनके यहाँ सरदार आनन्दसिंह का दूत आया और उसने सरदार से अपने आने की मंशा कही। सरदार अमरसिंह अत्यन्त ही आनन्दित हुए जब दूत ने उन्हें यह बताया कि 'उसका सरदार' अपनी अपूर्व सुन्दरी युवती-पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार उनके पुत्र अजय से स करना चाहता है।

वे सदैव से इस बैर के विरोधी थे, क्योंकि वे जानते थे कि सरदार आनन्दसिंह व उनके आदमी भी वीर राजपूत है। वे नही चाहते थे कि राजपूतो का खून इस प्रकार आपस में लड़ लड़ कर ही बहाया जाय। किन्तु कई पीढ़ियों से चले आते हुए मनोमालिन्य को अपनी शान के कारण वे कैसे मिटा सकते थे। यही कारण था कि कई बार उन्हे सरदार आनन्दसिंह से अकारण ही लड़ाई मोल लेनी पड़ी थी।

साथ ही सरदार आनन्दसिंह के 'काले हृदय' से वे पूर्ण रूपेण परिचित थे। वे जानते थे कि वे वीर होते हुए भी परले सिरे के मक्कार, कमीने और धोखेबाज़ हैं और इसी कारण इस दूत के आगमन और इस शुभ समाचार के कारण उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ और सचमुच ही पहले तो वे उस दूत के मुख की ओर देखते ही रह गए। किन्तु फिर अपनी स्थिति एवं परिस्थिति समझ कर उन्होने अपने आपको स्वस्थ कर लिया और दूत को अपने यहाँ की बहुमूल्य वस्तुएँ उपहार रूप में देकर उसके साथ विवाह की सुसम्मति भेज दी।

+ + +

अजय को इस सुसम्वाद से किसी प्रकार आनन्द नहीं था। वह यह नहीं चाहता था कि 'ऐसे पिता' की पुत्री से विवाह किया जाय, क्योंकि उसका अनुमान था कि 'पिता का यदि उस कुमारी कलिका पर थोड़ा-सा असर पड़ गया तो वह उसकी सफल जीवन संगिनी नहीं बन सकेगी; सदैव ही उसका जीवन भार सा रहेगा। वह तो चाहता था एक भोला सौन्दर्य-जिसे इस संसार के कपट से कोई सरोकार नहीं, जो उससे देवी की तरह पूजा करवा सके, जिसमें इतनी क्षमता हो-आकर्षण हो।

यह जानते हुए भी कि कुमारी अत्यन्त ही रूपवती है, कुमार को उसके हृदय में उसके पिता के 'काले हृदय' का असर पड़ने की अवश्य आशंका थी, और इसी बात को लेकर एक दिन वह अपनी माता से कह उठा, "किन्तु माताजी! क्या पिता का असर उसकी संतान पर नहीं पड़ता।"

कुँवरानी जी दुनियाँ देख चुकी थीं। वे समझ गईं कि लड़का अपने भविष्य की चिन्ता के कारण ही ऐसा कह रहा है। उन्होंने उसे समझाया, "बेटा! यह कहना ठीक है कि पिता का असर उसकी संतान पर अवश्य पड़ता है किन्तु यदि माता सुशील होती है तो पिता का प्रभाव संतान पर नहीं के बराबर ही पड़ता है, क्योंकि प्रारम्भिक लालन-पालन शिक्षा-दीक्षा आचार-विचार संस्कार आदि का माँ के ही हाथों बीजारोपण होता है। इस सब के लिए माता कई अंशों में उत्तरदायी होती है और जैसा बीज

और जल किसी पौधे को मिलता है, वैसा ही फल वह देता है।

"और कुमारी व उसकी माँ को तो मैं अधिक दिनों से जानती हूँ। बेचारी! वह तो दूध-सी स्वच्छ-लता-सी कोमल और कमल-सी सुन्दर है। मै जानती हूँ कि तेरा मन इस समय क्या कह रहा है। किन्तु बेटा! यह प्रश्न राष्ट्रीय भी तो है। वैसे भी कुमारी में किसी प्रकार के अवगुण नहीं है और यदि और कुछ नहीं तो राष्ट्र को तेरे इस त्याग से कितना अधिक लाभ होगा। तेरे एक इतने से 'हाँ' पर दो पडौसी रजवाड़ो का मनोमालिन्य सदैव के लिए नष्ट हो जायगा। राष्ट्र को कितना लाभ होगा इससे?"

अन्ततः विजय को 'हाँ' करना ही पडा। उसने भी कुमारी के रूप एवं गुण की प्रशंसा सुन रखी थी। उसने अन्त मे स्वीकृति देदी और वह दिन आया कि

पूर्णमासी का चन्द्रमा अपनी चौदहो कला से आकाश मे विहँस रहा था। उसकी शुभ्र चाँदनी में विवाह वेदी अत्यन्त ही सुन्दर लग रही थी। दोनो ठिकानो में भारी तैयारियाँ हो रही थीं। मुख्य नगर दीप-मालिका का सा आनन्द अनुभव कर रहे थे। वर्षों से पडी बैर की गाँठ खुलने जारही है यही सोचकर प्रजाजन का आनन्द-उत्साह द्विगुणित हो रहा था—दीर्घकाल के मनोमालिन्य के पश्चात् अब कुछ चैन के दिन आ रहे थे। दूसरे उनके राजकुमार और राजकुमारी का पाणिग्रहण भी हो रहा था, यही सोच सोच कर वे लोग पुलकमन इधर-उधर मगलगान करते और

आनन्दोत्सव मनाते फिर रहे थे।

और ....

जब अग्नि के समक्ष जीवन की सात ग्रन्थियाँ लग चुकीं, जब जीवन की उस भारी सी गठरी को उठाए अजय चला उस समय पौ फट चुकी थी। रात्रि के 'इस सब' से वह एक प्रकार से ऊब सा चुका था और चाहता था कि इससे बहुत जल्द ही छुटकारा मिले और इसीलिए जब पण्डितजी ने अन्तिम संस्कार खत्म किया तो वह बड़ी उतावली से पिता से बोल उठा, " पिताजी ! अब चलिए। अब शीघ्रातिशीघ्र गढ़ में प्रवेश किया जाय। "

एक बड़ी-सी भीड में से होकर विवाह का जुलूस चला। सरदार आनन्दसिंह ने बहुत-सा धन आदि दहेज़ में दिया था। साथ ही लगभग सौ पालकियाँ और दी थीं। इस तरह जुलूस लगभग एक मील लम्बा था।

नगर तोरण पर दुंदुभी ने गगनभेदी शोर किया। तोरण के पास ही नक्कारखाने से शहनाई बज उठी। नगर द्वार पर फूलों की वर्षा होने लगी व जयध्वनि के साथ ही नगर द्वार खुल गया कि . ..

दहेज में आई हुई सौ पालकियों में से परिचारिकाओं के बजाय सुसज्जित सेना निकल पडी और उस भीड़ में से भी कुछेक मनुष्य जो कि तमाशा देखनेवाले ही ज्ञात होते थे जाकर उसी सेना में मिल गए।

दम के दम में विवाह-समारोह-स्थल, रणभूमि बन गया। सरदार अभयसिंह ने आनन्दसिंह के मुख पर आई

हुई उस कटु मुस्कान को देखा था और उनका माथा भी उसी समय ठनका था किन्तु किसी प्रकार वे अपने विचारो को दबाए हुए सरदार आनन्दसिंह के साथ अपने-अपने झंडे लिये हुए हाथियों को बढ़ाए जा रहे थे कि …

सहसा सरदार आनन्दसिंह की तलवार चमक उठी और वे चाहते ही थे कि एक ही वार में सरदार अभयसिंह का मस्तक पृथ्वी पर धूल से खेलने लगे कि सरदार अभयसिंह भी सतर्क हो गर्ज उठे, कमीने ! पाजी !

और तलवारें चमक उठी। क्षणभर में द्वार प्रागण लाशों से पट गया। कुमार अजय के मन मे आरम्भ से ही खुटका लग रहा था अतएव पिता की गर्जना सुनते ही वे परिस्थिति से अनभिज्ञ न रह सके और उन्होंने भी तलवार म्यान से निकालकर अपने 'शुभ बन्धन' को काट डाला एवं स्वतंत्र हो इस स्वतन्त्रता-सग्राम मे आ डटे। उन्होने इस बात की परवा तक न की कि उनकी नववधु का क्या हाल है।

घमासान युद्ध हो रहा था। लाशों से प्रागण पटा जाने लगा। एक तीर आकर सरदार अभयसिंह की आँख में लगा। किन्तु उन्होने उसे तिनके की तरह निकाल कर फेक दिया। रक्त का फौवारा-सा छूट निकला। उन्होने इस बात का प्रयत्न किया कि वे फिर उसी वेग से युद्ध करें किंतु फिर वे वार न कर सके। अब वे केवल अपने ऊपर किये जाने वाले वारों को बचाने लगे। किंतु रक्तस्राव के कारण उनके अंग-अंग मे शिथिलता व्याप्त होने लगी।

वे हौदे मे बैठने लगे, झंडा गिरने लगा।

और उसी समय विद्युत के प्रकाश की तरह सर से पैर तक काला लबादा पहने हुए एक आकृति ने आकर उस झंडे को थाम लिया। सेना के उखड़े हुए पैर फिर जम गए। सरदार के गिरने के कारण भागनेवाली सेना फिर जी जान से युद्ध करने लगी।

और . . . और अन्त मे सरदार अभयसिंह की युद्ध मे विजय हुई। आनन्दसिंह बन्दी बना लिए गए।

किन्तु सरदार अभयसिंह अपनी इस विजय को न देख सके और इसके पूर्व ही कि यह सुसंवाद उन तक पहुँचे वे इस शरीर को छोड़कर वीर गति को पागए। युद्ध की मृत्यु गणना मे इस सब से प्रथम नाम के बाद ही एक दूसरा नाम भी था 'कुमार अजयसिंह'—और उसी के आगे अत्यन्त ही छोटे अक्षरो में लिखा हुआ था "जिसने अपने जीवन के प्रथम आनन्द के समय राष्ट्रीय आवश्यकता के कारण अपने प्राण तक की परवाह न की"।

[२]

किन्तु. .

किन्तु जब कुमार अजय ने अपनी आँखे खोलीं तो उन्होंने अपने आपको एक साधारण-सी झोंपड़ी में पाया। वे आश्चर्य-चकित हो चारो ओर देखने लगे। कुछ क्षण तक वे इसी प्रकार पड़े चारों ओर देखते रहे कि सहसा सामने के द्वार से हाथ में सुन्दर-सा ग्लास लिए एक अत्यन्त सुकुमार और अनिन्द्य सुन्दरी ने प्रवेश किया।

कुमार ने कई राजकुमारियाँ और सुन्दर स्त्रियाँ देखी थीं किन्तु एक साधारण से वेश में—श्वेत साडी के इस वेश मे—इतनी सुन्दरी किसी राजकुमारी को भी नहीं पाया था। वे कुछ क्षण तक उसे अपलक नेत्रो से देखते रह गए।

और तत्काल ही उनका मन बोल उठा कि जिस जीवन संगिनी की रूपरेखा वे अपने हृदय में स्थापित कर चुके थे वह तो साक्ष्य-साकार उनके समक्ष ही खड़ी है। कुछ क्षण की स्तब्धता के पश्चात् वे बोल उठे।

"भद्रे! मैं कहाँ हूँ?"

अभी तक उस सुन्दरी का ध्यान कुमार की ओर नही था। वह तो अपने विचारों में तल्लीन अपने में खोई हुई सी—द्वार से बाहर जाने ही वाली थी कि उसने सुना, "भद्रे! मै कहाँ हूँ?"

एक मुस्कान उसके मुख पर फैल गई। वीणा-विनिन्दित से स्वर मे उसने उत्तर दिया, "जी! आप?" आप सरहद के एक लकड़हारे की झोपडी मे हैं।

"और मेरा राज्य?" क्योंकि अजय ने अपने गिरने के पहले ही पिता को गिरते हुए देख लिया था।

और इसी कारण उसने यह प्रश्न किया।

"आपका राज्य? वह कहाँ है?" सुन्दरी ने आश्चर्य-मुद्रा से कहा।

"मै... ..गढ़ नरेश का पुत्र हूँ। मैं ही उनके बाद उस राज्य का शासक होने वाला था। पिताजी की मृत्यु मैंने अपनी आँखों देखी है।" कहते-कहते कुमार की आँखों से

अश्रुधारा बहने लगी। कुछ क्षण पश्चात् उन्होंने अपने आपको सम्हालकर पुनः कहा, "किन्तु अब मुझे जाना चाहिये। न जाने शत्रु ने राज्य का क्या हाल किया होगा?"

"अभी नहीं महाराज। थोडा समय और व्यतीत होने दीजिये। देखिये अभी तो आप चल फिर भी नहीं सकते।"

और सचमुच ही कुमार अजय की उठने की चेष्टा असफल ही रही। सुन्दरी ने अपनी सुन्दर बाहुओं का सहारा देकर कुमार को और आराम से लिटा दिया और उसने उत्तर दिया, "आपको राज्य-कार्य का तनिक भी खयाल न करना चाहिये। कुमारी रानी के हाथों में पहुँचकर वह एक सुव्यवस्थित और शान्तिपूर्ण राज्य होगया है।"

फिर धीरे-धीरे उसने बताया उसका स्वय का नाम 'ज्योत्स्ना' है। वह इसी झोपडी में रहने वाले लकडहारे 'गिरवरसिंह' की मुँहबोली पुत्री है। उसने यह भी विस्तारपूर्वक बताया कि सरदार अभयसिंह के गिरने के बाद 'कुमारी' ने किस प्रकार वह झण्डा ऊँचा रखा व युद्ध में हराकर अपने पिता को बन्दीग्रह में डाल दिया और अब शान्ति, तत्परता एव सद्बुद्धि से वह राज्य का काम चला रही है। साथ ही उसने यह भी बतलाया कि राज्य के कर्मचारियों के द्वारा मृत समझकर छोडदिये जाने के पश्चात् वह यहाँ उठा कर लाया गया और सारे राज्य में वह मृत मशहूर है।

कुमार ने सब कुछ सुना। उन्हें एक प्रकार का दुख हुआ कि सचमुच ही उन्होंने उस सुकुमार बालिका के प्रति अन्याय किया है। 'कुमार' का मुख एक बारगी ही कई भावों से ओत प्रोत हो गया। उन्होंने यह ख्याल नही किया था कि वह एक राजपूत बाला है जिसके लिए परमेश्वर ही पति है—जो पति का अनिष्ट होते नहीं देख सकती—जिसके पति के सिवाय संसार मे और कोई नहीं है। वे उस बालिका का विशेष त्याग देखकर गद्‌गद् होगये।

और इसी प्रकार एक मास बीत गया... ..

कुमार सोचते 'जीवन की अन्तिम सीढी पर पहुँचते-पहुँचते इसी ज्योत्स्ना ने ही उन्हें बचाया। इसी की तत्परता के कारण वे आज इस काबिल हुए कि वे इस सूर्य की प्रखर किरण-समूह को देख सकें और सचमुच ही वह ज्योत्स्ना को प्यार करने लगे है और जीवन मे सबसे पहली बार जिसे हृदय ने अपना कहा उसी को अपनाने के लिए वे लालायित हो उठे है। वे उसकी सुन्दरता मृदुल व्यवहार एव शालीनता को जी जान से चाहने लगे है।

ज्यों ज्यों दिन व्यतीत होने लगे वे ज्योत्स्ना के प्रति अधिक से अधिकतर आकर्षित होने लगे और एक दिन तो उन्होंने ज्योत्स्ना को अपने विचारो से अवगत कर दिया। ज्योत्स्ना लज्जा से लाल हो गई। उसके मुख पर नव वधू की सरस लालिमा का सा उन्हें आभास हुआ। वे समझ गए कि ज्योत्स्ना भी उनसे प्रेम करती है।

किन्तु एक दिन प्रातः ही कुछ सवार आकर उस

झोपड़ी पर रुके। कुमार बाहर ही टहल रहे थे। सवारों ने उन्हें देखते ही कोर्निश की और एक परवाना उनके हाथ में दिया।

कुमार ने उसे उलट पलट कर देखा। उस पर राज्य की मोहर थी; इसलिए अत्यन्त ही उत्सुकता से उन्होंने वह परवाना खोला। उसमें लिखा था:—

प्रियतम!

दासी का सादर प्रणाम।

मुझे पूर्ण रूप से अवगत है कि आप मुझसे अप्रसन्न हैं। किन्तु आप के दर्शनों का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकती। साथ ही जब से प्रजा को आपके वहाँ रहने की बात ज्ञात हुई है उसका अनुरोध भी दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जारहा है। अतएव यही अत्युत्तम होगा कि आप लौट आएँ और हम आपकी सेवा का सुअवसर प्रदान करें।

दासी—'कुमारी'

अजय ने कई बार पत्र आद्योपान्त पढ़ डाला। सहसा उनका हृदय दुखित हो उठा। किन्तु कुछ क्षण पश्चात् अपने आप को सम्हालकर उन्होंने कहा, "महारानीजी को हमारा मौखिक सन्देश दे देना कि इसका उत्तर उन्हें मिल जाएगा।"

सवार कोर्निशकर चले गए। कुमार ने कुटिया के अन्दर आकर कहा, "ज्योत्स्ना! अब क्या होगा? मैं तो यहाँ से जाना नहीं चाहता।"

ज्योत्स्ना के मुख पर सहसा ही एक हास्य की क्षीण-सी रेखा दौड़ गई और कुछ क्षण पश्चात् उसने अत्यन्त ही लज्जायुक्त चेहरे से मुख नीचा किए हुए ही कहा, "कुमारजी! यह सत्य है कि अपना जीवन देकर भी मैं आपको रखना चाहूँगी, किन्तु मैं यह भी नहीं चाहती कि आप पूज्य पिता श्री की आज्ञा का उल्लंघन करें—मैं नहीं चाहती कि आप मृत आत्मा को दुख पहुँचावें।"

कुछ रुककर ज्योत्स्ना ने फिर कहा, "और यह प्रश्न राष्ट्र का भी तो है। राष्ट्र को आपकी आवश्यकता है। राष्ट्र मुझ सरीखी पचासों ज्योत्स्नाएँ बना सकता है—पैदा कर सकता है किन्तु आप सरीखा वीर उसे विरला ही मिल सकता है। उसे आपकी आवश्यकता है। जाइये। आपको एक स्त्री की मीठी-मीठी बातों में पड़कर अपना राष्ट्रीय कर्तव्य न भूल जाना चाहिये। और राज्य करना एक स्त्री का कार्य तो नहीं है?"

"ज्योत्स्ना! मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करती हो, जीवन का सब कुछ देकर भी तुम मुझे यहाँ रखने की इच्छा रखती हो और मैं भी यहाँ से जाना नहीं चाहता। फिर तुम ही मुझे क्यों मजबूर कर रही हो? जब कि राज्य एक सुयोग्य हाथों में है तो मुझे भी तुम्हारे हाथों में ही क्यों नहीं रहने देतीं?"

"कुमारजी! राष्ट्र की आवश्यकता मेरी और तुम्हारी आवश्यकता से कहीं अधिक बड़ी है। उसकी चाह मेरी

आया, लिखा था, "जीवनधन ! मैं जानती हूँ आप क्यों नहीं आना चाहते । इसी कारण मैं जा रही हूँ । मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण राष्ट्र की इतनी बड़ी हानि हो । ज्योत्स्ना बहिन सहर्ष आकर यहाँ रानी के पद को सुशोभित कर सकती हैं ।

किन्तु जाने के पूर्व मेरी एक इच्छा है—अन्तिम इच्छा । और अन्तिम इच्छा तो प्रत्येक की पूरी की जाती है । इसीलिए आशा है कि आप मुझे निराश न करेंगे ।

जाने के पूर्व केवल एक बार मैं आपके दर्शन करना चाहती हूँ—केवल एक बार । क्या इस सौभाग्य से भी भी आप मुझे वञ्चित रखेंगे । आपकी,

दुखिया कुमारी

कुमार के हृदय में एक तूफान उठ खड़ा हुआ । उसका हृदय एक बारगी ही उद्वेलित हो उठा । वे सोचने लगे कि..

मुस्कराती हुई ज्योत्स्ना ने प्रवेश किया और कहा, "क्या कुमारी रानी जारही है ? केवल मेरे कारण ?"

कुमार एक दम चौंक उठे । वे एक टक ज्योत्स्ना के सुन्दर मुख को देखते रह गए ।

ज्योत्स्ना ने कुमार के मुखाङ्कित भाव पढे और फिर बोली, "नहीं, कुमारजी ! आपको जाना होगा । ऐसा नहीं होगा—ऐसा नहीं हो सकता ।"

[४]

गढ़-प्रासाद का विशाल प्राङ्गण । एक ओर सुसज्जित

सेना-दूसरी ओर सज्जित वेश में नत-मस्तक सरदार-गण। सामने का द्वार खुला। कुमार ने प्रवेश किया। सेना ने सलामी दी। सरदारों ने मुजरा किया। कुमार ने सबके उत्तर दिए व 'जै माताजी की' की और आगे बढ गए। प्रासाद का मुख्य द्वार पार किया और प्रहरी को आज्ञा दी, "महारानी को सूचित करो कि महाराज आगए हैं।" और पास ही पडी हुई कोच पर वे स्वय बैठ गए। जीवन के अत्यधिक विषम क्षणो से वे गुज़र रहे थे कि सामने से प्रहरी ने आकर कोर्निश की व विनीत स्वर में कहा, "महाराज की जय हो। महारानी जी महाराज से उनके स्वय के प्रासाद में मिलने के लिए आकुल हैं एवं विनय की है कि महाराज स्वय ही पधारें।

अजय वायु के वेग की तरह उठ खडे हुए। वे सदैव के परिचित राजमहल के विशाल प्रकोष्ठो से होते हुए महारानी के प्रासाद के मुख्य द्वार पर पहुँचे। दासी ने झुककर कोर्निश की और महाराज के समक्ष फूलो से भरी थाली उँडेल दी। दूसरी दासी ने आरती कर फूलों की माला 'महाराज' के कठ-प्रदेश में पहना दी।

'कुमार' को इस असमय के विलम्ब के लिए अत्यन्त ही खीझ आरही थी किन्तु महारानी की आज्ञा एव इच्छा समझकर उन्होंने चुपचाप इस प्रकरण की इति की और आगे बढे।

मुख्य द्वार बन्द था। कुमार के आगे बढ़ते ही एक

दासी ने द्वार खोल दिया एवं कुमार आगे बढ़े और उन्होंने देखा—सामने शुभ्र से सिंहासन पर पूर्ण रूप से सजी हुई बैठी थीं महारानी।

और कुमार एक बारगी ही चिल्ला उठे ' ज्योत्स्ना ! '

नगर तोरण में शहनाई बज उठी एव उसकी मधुर ध्वनि समस्त गढ़-प्रासाद में व्याप्त-सी होगई।

—नरोत्तम प्रसादजी भटनागर 'शान्त'

नारी जीवन का एक विषाक्त चित्र

मन्दा

(एक नारी की रूप-रेखा ।)

ज़रा आपको घर तक चलना पड़ेगा, 'एक पचास के आसपास की उम्र के व्यक्ति ने भीड से निकल मेरे करीब आकर कहा ।' मैंने कार्य मे व्यस्त रहते हुए ही पूछा—" क्यो, क्या बात है ? " उसने कहा, " एक बाई की तबियत खराव है । इस वक्त इलाज .. ..डाक्टर साहब है पर आप भी एक बार देखलें । मुझे इतने हल्के जवानो से संतोष नहीं होता । " मैंने प्रश्न किया, " तबियत खराब कब से है, रोगी की उम्र क्या है और डाक्टर साहब की राय क्या है ? "

उसने बताया उम्र है २० साल की, बीमार यों तो ४ साल से है, पर अब ज़रा ज्यादा हैं । डाक्टरों की राय भिन्न भिन्न है । मेरे दिल में ऐसे रोगी को देखने की भावना

जागृत हो उठी और उससे कहा तांगा रोको अभी चलता हूँ ।

+ + + +

चन्द लापरवाह नौकर नौकरानियों के अतिरिक्त आगन्तुक महोदय एवम् रुग्णा के सिवाय उस विशाल प्राचीन भवन में कोई दिखाई नहीं दिया । मैं रोगी को देखने से पहिले रोग आदि की जानकारी ले रहा था । उस व्यक्ति ने कई औषधियाँ जिन्हे दवा नही पौष्टिक खाद्य पदार्थ कहा जा सकता था, मेरे सामने रख दीं । साथ ही टेम्प्रेचर चार्ट व वेट रिकार्ड भी । मरीज़ की कराहट ने मुझे समय का ख्याल दिलाया । और मैं रोगी की पल्स, पेट, लंग्ज़ और हृदय की धडकन देखने लगा । उसने मेरी आवाज़ सुनते ही मुझे कौतूहलवश देखना शुरू किया और शक्ति खर्च करते हुए उसने कहा, " दादा । " मैं परिस्थिति के समझने के दौरान में सान्त्वना दे रहा था कि मस्तिष्क में मन्दा का बाल चित्र समा गया । मैंने कहा " क्या मन्दा " " हाँ, दादा, " कहकर उसकी आँखे भर आईं और मैं सिहर उठा—महोदयजी सारे कौतुक पैनी नजर लगाये देख रहे थे ।

वे मन्दा के पति थे । मैंने अपनी प्रश्नावली को खतम करके उसे आरोग्य-लाभ की अवधि बताकर सान्त्वना दी, और चलने को उठा । देखा उसकी आकृति भयभीत-सी थी । मैं बिना रुके चल पड़ा दर्वाजे की ओर । उन्हे संतोष

दिलाया कि रोग खतरनाक तो नहीं पर कष्ट साध्य अवश्य बन गया है। इलाज कीजिये ठीक हो जायगा।

+ + + +

कुछ दिन पश्चात्—

फिर वही सज्जन बुलाने आये उसी रुग्णा को दिखाने के लिये। मेरे मस्तिष्क में मन्दा का तूफानी चेहरा एवम् उसकी बेबसी चक्कर काटने लगी। तागे में बैठ रवाना हुआ। बाद में ज्ञात हुआ कि मन्दा उन्हे मेरा बाल परिचय दे चुकी है। उन दिनों का जब हम एक दूसरे से बहुत नज़दीक थे। उसके और मेरे घर मे थोड़ा ही फासला था। मन्दा की माँ मुझे बेटा कहती और मेरी बूढ़ी दादी उसे बेटी। मन्दा अधिकार की भाषा में मुझे दादा कहती। मन्दा के उस जीवन और इस जीवन में आज़ादी और गुलामी की परिभाषा स्पष्ट ही दिख पड़ती है। ये व्यक्ति आज के पाँच वर्ष पूर्व मन्दा की माँ की राय के विरुद्ध लालची बाप को बर्गला कर अपनी धन राशि के बल पर मन्दा को अपनी विवाहिता बना लाये—तब से वह अपनी माँ के यहाँ एक बार, बस एक बार गई थी।

उसका मन खिन्न हो उठा। जीवन परिवर्तन से उसे लगा कि ये माँ बाप मेरे पैसे पर पल रहे हैं। वह चन्द दिन ठहरी और लौट आई अपने घर जहाँ वह अधिकार के साथ मालिकिन है।

बस सभी से उसका स्वास्थ्य खराब है।

+ + +

मैं ज्योंही कमरे में उसे देखने को दाखिल हुआ वह उठ बैठी और बनिस्बत पहिले के कुछ ठीक लगी। उसने संकेत की भाषा में पान लाने को कहा। बराबर के कमरे से वे सज्जन ज्योंही पान लाने गये उसने एक पत्र मेरे हाथ में धर दिया। उसके किनारे पर लिखा था बड़े बड़े अक्षरों मे 'प्राइवेट'। मैंने जेब में धर लिया उसे। और फिर उसी तरह सान्त्वना देकर वापिस लौटा।

पत्र यों था—

दादा,

कुछ सुनाने को तुम मिल गये—मैं खुश हूँ। मेरा सौदा मेरे माता पिता ने खूब अच्छी तरह किया, अब मुझे केवल घृणा है उनसे, किसी किस्म की बगावत नहीं। मैं ऊब गई हूं ५ वर्ष की इस दुनिया से, दादा—मुझे यहाँ कुछ तकलीफ नहीं है, पर फिर भी न जाने क्यों यह जिन्दगी मुझे मौत से अधिक अच्छी नहीं लगती। मैंने तय कर लिया है इस दुनिया से आज ही कूच करने का। मैं अपने संक्षिप्त उद्गारों को तुम्हें सौंप हल्की होगई। मुझे किसी चीज से स्नेह नहीं है। अब—बचपन की मीठी याद के साथ विदा।

—सन्दा

मैं कर्तव्य शून्य सा रह गया। दूसरे दिन सुना सन्दा सुरलोक सिधार गई है।

—वैद्य श्री सीरामजी अजमेरा

सुबह-शाम

जेल की लम्बी सज़ावाले कैदियों में से एक था वह। इसीसे हर कोई उसे जानता था। फिर उसने तो अपना एक खासा बड़ा परिवार सा बना लिया था यहाँ कि जिसमें सब कोई उसे 'काका' के नाम से ही पुकारते। और यही अब उसका नाम भी हो चला था—अपने साथी कैदियों में। वह ऊँचा सा जवान काम करने में मजबूत किन्तु बोलने में शांत था। उसके इस स्वभाव ने ही उसे जाने कब से कैदी से उठाकर मुखिया के पद पर बिठा दिया था।

यहाँ आने के बाद से उसने कभी दिन नहीं गिने। लेकिन दिनों ने उसकी साँसें गिनते हुए उसे इस अवस्था में पहुँचा दिया था कि जहाँ वह 'काका' न होकर 'बाबा' अधिक लगता था। अपने से सम्बंधित समस्त वस्तु और

चेतन पदार्थों के साथ गतिवान रहने के बावजूद भी तेली के बैल की तरह–दिन भर चले और गिनती में शून्य की तरह ही उसकी अपनी स्थिति थी।

यूँ समय बीतता ही गया। और एक दिन अचानक ही उसे मालूम हुआ कि छुट्टी के दिन मिलाकर उसकी सजा पूरी होगई। सुबह-सुबह का वक्त था। उसकी बैरक में अपने एक चिर परिचित साथी की रिहाई से आनंद की लहर किन्तु बिदाई से सन्नाटा-सा छाने लगा। लेकिन वहाँ किसका कौन हुआ है? यदि वह सजीव मनुष्य का एक अंग न होकर जड़ मशीन का ही एक पुर्जा रहा होता तो अपनी जुदाई के फल स्वरूप सम्पूर्ण मशीन में उत्पन्न शैथिल्य को देखकर उसे अपने अस्तित्व का भान हुए बिना न रहता। किन्तु वह तो समय के प्रवाह में बहकर आनेवाली वस्तु के अचानक ही भौंर में उलझने वाले की तरह ही एक दिन अनायास ही यहाँ आ पहुँचा था, और एक ही स्थान पर लगातार अनवरत लगाये जाने वाले चक्करों में से उत्पन्न गति ने उसे पुनः दूर-सुदूर फेंक दिया।

इस तरह बीतते हुए अँधियारे के साथ ही अपने साथियों से बिदा ले ठीक सूर्योदय के समय उसने एक नये संसार में प्रवेश किया। आज पूरे आठ वर्ष पश्चात् उसने अपने आपको एक ऐसी दुनियाँ में पाया कि जहाँ सब कुछ गोल ही गोल न होकर कुछ सीधा सच्चा भी दिखाई देता था। सामने विस्तृत खुले मैदान, और ऊपर भव्य दिव्य आकाश के बीच स्थित प्राकृतिक सौन्दर्य उसे

मुग्ध किये बिना न रहा। उसने एक दृष्टि सामने की सड़क पर डाली। उस लम्बी चौडी सडक से सटे पास ही के शहर में उसका अपना घर था, जिसमें एक स्नेहमयी नवयुवती की चिर परिचित–चिर प्रतीक्षित आँखें और एक पंचवर्षीय बालक की करुणापूर्ण असहाय दृष्टि उसके मस्तिष्क मे झनझाहट-सी पैदा करती घूमसी गई एक बार ही। और क्रमश सारे शहर का नक्शा आँखो में खिचने लगा; वह चल पड़ा एक सीधी रेखा में।

रास्ते मे उसकी कई तरह के आदमियो से मुठभेड हुई। न जाने कितनी मोटर, सायकल, ताँगे, बग्गी, लम्बे-चौड़े बाजार, गगनचुम्बी अट्टालिकायें सबकुछ मानो उसे अपनी ओर देखने को न्योता देते हुए से पीछे निकलते गये। लेकिन उसने किसी की ओर आँख उठाकर भी नही देखा। अत मे एक स्थान पर जाकर वह ठप से रुका। उसने देखा एक बार, दो बार, अनेक बार। और विश्वास किया उसकी आँखें उसे धोखा नहीं दे रही है। सामने यह जो खंडहर प्राय. झोपडा है, यही तो उसका अपना घर था। एक भारी सारास से वह सिहरे बिना न रहा। और उसके बाद पास-पडोस के लोगो से, जो कुछ भी उसे मालूम हुआ वह यही कि सामने के मकान मे जो स्त्री व पुत्र रहते थे वे अपने पति के जेल चले जाने की वजह से कुछ दिन तक तो येन केन प्रकारेण अपना कार्य चलाते रहे। लेकिन जब अपने शरीर की सम्पूर्ण शक्ति लगा देने एवं अपने घर की हर वस्तु का बलिदान चढ़ा देने के बाद भी उससे वे अपने जीवन

निर्वाह इतना भी न पा सके तो अंत में भीख माँगना ही उनका अंतिम सहारा बना। इसके चलते स्त्री की मृत्यु हो गई और तभी से वह बालक भी न जाने किस दिशा की ओर अपना पात्र लेकर रवाना हो गया।

सब कुछ उसने बड़े ही ध्यान से सुना और समझा और कुछ देर तक खड़ा भी रहा, गंभीरता पूर्वक स्तब्ध-सा जड़वत। लोगों ने उसे झोंपड़े की ओर जाते हुए देखा और साथ ही देखी एक प्रचंड 'लौ' भी, जो उसके अपने मकान से ही शुरू हो क्रमशः सारे मुहल्ले पर कब्जा करती जा रही थी। लोगों को समझते देर न लगी। समझी-समझाई बात थी। सारा किस्सा सामने था।

और शाम होते न होते वह पुनः जेल की ओर जाते हुए देखा गया। मालूम हुआ, उसने कहा था कि, "यदि मेरी अनुपस्थिति में जीवन निर्वाह के साधनों के अभाव में मेरे स्त्री पुत्रों का नष्ट होजाना दुनियाँ की दृष्टि में पाप नहीं है तो मेरे द्वारा मेरे जड़ तुल्य मकान को जला डालना भी पाप नहीं हो सकता।"

जेल का फाटक खुला और ठीक जिस समय जिस तरह सुबह उसकी रिहाई हुई थी उसी समय, उसी तरह शाम को वह पुनः अपने साथियों में जा मिला।

—रामनारायण उपाध्याय

अतिक्रांत

मेरी तेरह-वर्षीया उषा बला की नटखट है। चपलता, उसमें कूट कूट कर भरी पड़ी है। बातूनी तो वह बेहद है ही। बात-बात से हर किसी को बनाने में उसे बहुत ही आनंद आता है। उसकी मा का विचार है कि यह सब मेरे सिर चढ़ाने का नतीजा है।

उषा मेरी एकमात्र संतान है। शादी हुए आज पंद्रह वर्ष हो गये परन्तु मुझे केवल एक ही लड़की का बाप कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लड़का या लड़की जो कुछ भी मेरे है वह उषा ही। और इसीलिये उसने मेरा समस्त प्यार भी पाया है। लाड-प्यार में पलकर वह पहले सिरे की नटखट हो गई है। फिर सुख-साधनों की भी उसे कमी नहीं रही क्योंकि ईश-कृपा से मैं पाँच सौ माहवार

कमाता हूँ वह दूध घी मे कुल्ले करती चली आरही है। अभाव उससे कोसों दूर रहा। दुःख किस बला का नाम है—इसे भी शायद वह नहीं जानती है।

इस छोटेसे कस्बे का मैं हाकिम हूँ और इतना बड़ा शानदार बँगला इसी हाकिमी का प्रसाद है। नौकरो-चाकरों की कमी नहीं। मेरे इशारे पर कस्बे में हलचल मच सकती है। मेरी इस महत्ता का फायदा उषा खूब उठाती है। मिस्टर स्कॉट की लड़की के साथ दिनभर वह इधर-उधर घूमा-फिरा करती है तथा लोगों को खामखां तंग करती है। मैं जो भी यह पसंद नहीं करता कि वह इस प्रकार उपद्रव करती फिरे परन्तु अपनी एक-मात्र संतान को डाँटने डपटने की इच्छा नहीं होती। मेरी पत्नी के शब्दों मे मेरी यह चुप्पी उसके लिये प्रोत्साहन है।

आये दिन उषा को लेकर ही पत्नी तथा मेरे बीच तू-तू मैंमैं हो जाया करती है। पत्नी अक्सर कहती है—"देखोजी, लडकी को इस तरह सिर पर चढ़ाना ठीक नहीं, वह पराया धन ठहरी। जिंदगी भर बाप के घर तो बनी नहीं रहेगी!"

इस पर मै उसे समझाता—"अरे भई, अभी बच्ची है। यही तो खेलने-कूदने के दिन हैं। बड़ी होगी तो अपने आप समझ जावगी।"

वह चिढ़कर कहती—"तेरह की तो हो चली और अभी भी बच्ची है। तेरह वर्ष की छोकरियाँ तो घर के

काम-काज सँभालने लग जाती है। पर उसे तो 'खिल-खिल' और उस 'अँगरेज की बच्ची' के मारे फुर्सत ही नहीं। उसे आखिर 'मेम' तो बनना है नहीं।"

मैं दलील पेश करता—"आखिर तुम भी तो उसकी माँ हो। कुछ तुम्हीं समझाओ! 'चूल्हा-चक्की' की शिक्षा देने से तो मैं रहा।"

"पर वह मेरी माने तब ना! तुमने उसे बिगाड़ कर धूल जो कर दी।"—वह बोलती।

मैं चिढ पडता—"तो क्या उसे मार डालूं! आखिर तुम लोगों की मरजी क्या है?"

पत्नी यह सुनते ही अपना-सा मुँह लिये चली जाती।

[२]

सुबह बगीचे में बैठा हुआ मैं धूप ले रहा था कि उषा रोती-रोती मिस स्कॉट के साथ आई। यह पहला ही अवसर था जब वह मेरे पास रोती हुई आई।

"क्या हुआ बेटा?"—मैंने पूछा।

वह जवाब में और ज्यादा फूट-फूट कर रोती रही।

इंग्लिश में मैंने मिस स्काट से पूछा—"क्या बात है?"

"एक 'नेटिव' ने उषा को तमाचा मार दिया।" उसने उत्तर दिया।

यह सुनते ही मैं आग-बबूला हो उठा। किसी की क्या मजाल जो मेरी लड़की को तमाचा मार दे! और

वह भी एक हाकिम की लडकी को जिसके इशारे मात्र पर कस्बे मे हलचल मच सकती है। नौकर से छड़ी मँगाकर उषा तथा डोरा (मिस स्कॉट) को साथ लेकर मै उस पाजी की मरम्मत करने निकल पड़ा। रास्ते मे मैंने उषा से पूछा—"उसने तुम्हें क्यों मारा बेटा !"

उषाने कहा—"यूँ ही। मैं और डोरा दोनों ही घूमने जा रही थी। रास्ते में एक छोकरे ने डोरा को 'बन्दरी' कह दिया। मैने इस पर उस छोकरे के दो 'टो' रसीद कर दिये। इतने में एक आदमी ने आकर मुझे एक तमाचा मार दिया और बोला—'मगरूर लड़की अपने दिमाग को आसमान पर मत चढ़ा। तू भी आखिर है तो काले चमड़े की हिन्दुस्थानिन ही। 'मेम' के साथ तू तो मेम बनने से रही। और भी न जाने वह क्या-क्या कहता रहा। डोरा हँसने लगी तो इसे भी उसने डाँट दिया। वह देखिये, वह क्या अकड़ भुट्टे-सा चला आ रहा है।"

मैंने देखा—कुछ दूरी पर एक दुबला-पतला, गौर-वर्ण व्यक्ति चला आ रहा था। वस्त्रों से रईस जान पड़ता था। जब वह दस-बारह कदम दूर रह गया तो मैंने डपटकर आवाज दी—"ए, जरा इधर आओ !"

उसने पास आकर जरा गौर से देखा और फिर एकाएक बोल उठा—"कहो बेटा अविनाश, हिमायती बनकर आये हो क्या ?" और लपककर उसने मुझे बाहो मे भरलिया !

जब वह मुझसे जुदा हुआ तो मेरे मुँह से निकल पड़ा—

"अरे श्रीकांत ! तुम यहाँ कैसे आई ? तुम तो बिल्कुल सूख गये। पहचानने में भी नही आते !"

"तुम्हारी आँखो पर हुकूमत की पट्टी जो चढी है। पहचानो तो कैसे पहचानो ?"

"क्यो जलील करता है यार ?" झेंपते हुए मैंने कहा तथा फिर उषा से बोला—

"बेटी, बाबूजी को नमस्कार करो !"

"इस जानवर को नमस्कार करूँ ?" उषा मुँह बिचकाते बोली।

मैं गुस्से मे तमतमा उठा। लाड़-प्यार को ताक मे रखकर दो-तीन तमाचे उषा के जड़ ही दिये। वह जोरो से रो पडी तथा डोरा भय से चीख उठी।

"चुप !" गर्जते हुए मैंने कहा और उसे एक और थप्पड़ रसीद करने के लिये हाथ उठाया, परन्तु श्रीकात ने उसे अपने पास खींच लिया।

उषा रोती रही, पर मैंने इसकी तनिक भी चिंता न की। श्रीकांत से पूछा—"कब आया ?"

"सात दिन हो गये।" उषा के सर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा।

"घर क्यो नहीं आया ?"

"मुझे क्या पता था कि तू यहाँ टुकड़े तोड़ रहा है। वरना मैं डाक बंगले में तो पड़ा नहीं रहता।"

"अच्छा अब तो घर चल !"

"जरूर !"–कहते, उषा का हाथ पकड़ वह संग हो लिया।

रास्ते भर मैं श्रीकांत के बारे मे सोचता रहा। घर आया तो भी उसी के बारे में सोचता रहा—ओफ! अब कितना दुबला-पतला हो गया है यह श्रीकांत ! कॉलेज के श्रीकांत मे और आज के श्रीकांत मे ज़मीं आसमां का फर्क पड़ गया है। कॉलेज में हम सहपाठी थे। पर उस समय मैं आज सा पैसेवाला कहाँ था ! तब यही श्रीकांत आँख मीचकर मुझे सौ सौ–दो दो सौ रुपये जबरदस्ती थमा देता था। यदि कभी आना-कानी करता तो हलका-सा चपत जमा यही श्रीकांत कहता—"क्या मुझे पराया समझता है पगले !"

केवल मुझ अकेले को ही उसने मदद न दी थी। मुझसे सैकड़ों थे सैकड़ों। यह श्रीकांत इसीलिये सबका भैया था–कॉलेज की शान था। पैसे वालो के लड़कों की तरह न यह दब्बू ही रहा और न घमंडी ही। उल्लास तो जैसे इसके चेहरे से टपकता रहता था। हँसना-हँसाना श्रीकांत को अत्यन्त प्रिय था। परन्तु ऐसा श्रीकांत आज के तेरह वर्ष पूर्व का श्रीकांत था।

परिवर्तन-चक्र का दौर हुआ—किस्मत के थपेड़ों ने सबको अलग-अलग कर दिया। श्रीकांत अपने रास्ते लगा, मैं अपने रास्ते। उसके पश्चात न कभी मिले, न पत्र व्यवहार ही हुआ। परन्तु अहा ! श्रीकांत मुझे भूला नही; उसका

प्रेम ज्यों का त्यों बना रहा। कितने तपाक से मिला वह मुझसे! कितने स्नेह-भरे उलाहने कसता है वह!

मैं इसी प्रकार की उधेड़बुन में उलझा रहता, यदि श्रीकांत धप टिका मुझे न कहता—"कहो बेटा, सामान भी मँगवाते हो या जावें वहीं?"

नौकर की तरह सर झुकाकर मैंने कहा—"अभी गाड़ी भिजवाता हूं सरकार!"—और मैं नंगे पावों गैरज तक भागा-भागा गया।

सारे दिन मैं कुछ खोया-खोया-सा रहा। आह! कितनी प्रसन्नता हो रही थी उस दिन मुझे! काश! मैं अपना हृदय चीर देख सकता।

[२]

श्रीकांत मेरे यहाँ ठहरा है। परन्तु लगता ऐसा है जैसे जन्म से ही वह मेरे यहाँ रह रहा है। यहीं ठहरे उसे पन्द्रह दिन हो गये और उसका विचार यहीं ठहरने का भी है। अपने संतप्त हृदय को समझाने वह बाहर निकला है। बहन की मृत्यु हो जाने से घर में उसकी तबियत जरा भी नहीं लगती। जगह-जगह भटकता ही फिरता है। जमींदारी कारिन्दों के भरोसे चल रही है।

इन पन्द्रह दिनों में उसने पाच सौ को बत्ती दिखा दी है। मना करते रहने पर भी वह उषा के लिये अनाप-शनाप वस्तुएँ उठा लाता है। यह कहते मेरा हृदय बाँसों उछलता है कि श्रीकांत का साथ पाकर मेरी उषा में चार चाँद

लग गये हैं। कितनी सीधी-सादी हो गई है वह! उसकी इस काया-पलट को देखकर उसकी माँ तो दाँतों तले उँगली दबा लेती है। और उषा अब दिन भर न गली में दौड़ती रहती है, न ढोरों की सहेली। न वह अब अपनी माँ के लिये भार है, न बाहर वालों के लिये तूफान! अब तो वह केवल श्रीकांत की है। श्रीकांत के साथ ही वह खाती-पीती, उठती-बैठती है और उसी के साथ घूमा-फिरा करती है।

उसकी ये सिर-पैर की बातें सुनकर तो हँस-हँसकर रोना आ जाता है। श्रीकांत उषा को चिढ़ाने की गरज से पूछता है—"जानती है उषा, हम तेरी शादी किससे करेंगे?"

उषा शर्माती कली बनकर गर्दन हिला देती है।

"हम अपनी उषारानी का ब्याह काले मुँह के पूँछवाले जानवर से करेंगे।"—बच्चों की तरह खिल-खिलाते श्रीकांत कहता है।

उषा भी 'हट' कर झेंपती-झेंपती मुस्करा देती है।

फिर उषा का नम्बर आता है। वह भी आखिर पीछे क्यों रहने लगी? वह पूछती है श्रीकांत से—"और आप जानते हैं आपके विवाह की बात-चीत किससे चल रही है?"

"नहीं तो उषारानी!"—बनते हुए श्रीकांत कहता है।

"चार पैर वाली से!"

"वह कौन लड़की है उषारानी?"

"ओहो! आप अपनी दुलहिन को नहीं जानते?"—हवा में उछलते हुए उषा कहती है—"अरे वही! अपने

माली की चपी चंपाबाई !"

"नही उषारानी, मैं उस फूहड़ को नही ब्याहूँगा। माली की लडकी मैली-कुचैली भी तो रहती होगी।"

"तो फिर मिस्टर स्काट की 'टामी' से सही !"—और ताली बजा-बजाकर उषा हँसने लगती है।

श्रीकांत भी दिल खोलकर हँस पड़ता है और दोनो की खिल-खिलाहट कमरो मे गूँज उठती है। कभी-कभी मै और उषा की माँ भी उनकी हँसी मे सहयोग दे देते है।

[४]

हँसी-खुशी मे दो वर्ष बीत गये। उषा अब शादी लायक होगई है। उषा की माँ तथा श्रीकांत की इच्छा है कि उसकी शादी शीघ्र ही करदी जावे। श्रीकांत अपने खर्च से शादी करना चाहता है और मेरी पत्नी उसका पैसा व्यर्थ खर्चाना नही चाहती।

एक दिन, एक लडकेवाले संबंध की इच्छा से आ ही टपके। लडका भी साथ ही था। सुशील तथा काफी पढा होने के साथ ही साथ लड़का पैसेवाला भी था। हमारी पत्नी को लडका पसन्द आ गया। श्रीकांत ने भी सम्बन्ध कर देने की राय दी। दूसरे दिन तिलक निकाल देना निश्चित हुआ। परन्तु इसी बीच एक घटना हो गई।

हमेशा की तरह उषा श्रीकांत से बाते कर रही थी। बात-बात मे श्रीकांत ने उसकी शादी का जिक्र छेड दिया। और यह भी कह दिया कि अब शीघ्र ही उसे हम लोगो

से दूर होना पड़ेगा। यह सुनकर उषा रो पड़ी। उसे सान्त्वना देने के हेतु श्रीकांत ने उसके सर पर हाथ फेरा, गुदगुदी करा उसे हँसाने का प्रयत्न किया तथा आँसू पोंछ दिए उसके मुँह पर आई हुई करुणा हटाने लगा। यह सब लड़के तथा उसकी मौसी ने देख लिया और बात ही बात में उन्होंने राई का पर्वत खड़ा कर दिया।

मुझे तथा मेरी पत्नी को बुलाया गया। श्रीकांत के खिलाफ खासा लेक्चर सुना डाला। जो भी मैंने उन्हें श्रीकांत तथा उषा के सम्बन्ध के बारे में स्पष्ट कुछ कहा, परन्तु उन्होंने मेरी बातों की कोई परवाह न की। मेरी पत्नी भी उनके दुष्ट-चक्र में फँस गई और वे लोग जोर-जोर से अनाप-शनाप बकने लगे। मैंने अपनी पत्नी को आँखें दिखाईं; उन लोगों को भी समझाया इस डर से कि कहीं श्रीकांत न सुन ले। परन्तु भावी क्या टलती है? जिस बात का डर था हुई भी वही।

श्रीकांत ने सब कुछ सुन लिया। क्रोध में काँपता वह वहाँ आ खड़ा हुआ। उस समय वह अत्यन्त भयावना जान पड़ता था। हाथ की मुट्ठियाँ बाँधते उसने कहा "बदमाश के बच्चो! ऐसी बातें करते तुम्हें शर्म नहीं आती? सालो! पाप क्यों लगाते हो। उषा, मेरी बेटी......।" इतनी जोर से बोलने के कारण कमजोर होने की वजह से चक्कर खा जा गिरा।

मेरी आँखों में आँसू भर आये। बच्चों की तरह श्रीकांत

के वक्षःस्थल पर सर रख मै फफक-फफक कर रोने लगा । उसे ही सम्बोधित कर मैं कहता भी जाता—"श्रीकात, मेरे भैया, ये सब झूठे है । भैया मै उषा को जहर दे दूगा परन्तु तुम्हारा अपमान करने वाले के साथ अपनी उषा को हरगिज न   ।"

कुछ समय पश्चात उसने आँखे खोली तथा मेरे कधे पर हाथ रखकर बोला—"अविनाश, तू तो जानता है न श्रीकात को ! क्या वह ऐसा हो सकता है ? अच्छा, पर घर जाऊँगा । उषा की शादी कर देना । रुपयो-पैसो की चिता न करना । मुझे माफ कर देना भैया ! अफसोस मै उषा की शादी .   ।" और उसका गला भर आया ।

मैंने श्रीकात के पाव पकड लिये, लाख मनाया, पर श्रीकात टस से मस न हुआ । वह मुझे, उषा तथा उसकी मा को रोता छोड आखिर चला ही गया । उसके जाते ही उषा बेहोश हो गई । तीन दिन तक उसकी हालत चिता-जनक रही । वह दिनभर "श्रीकात, बाबूजी ! श्रीकात, बाबूजी !" ही चिल्लाया करती । पाँचवे रोज जाकर कही उसकी हालत सुधरी ।

पत्नी की जिद तथा लडके को अपने कृत्य पर हार्दिक पश्चाताप करते देख मुझे मन मारकर उषा की सगाई उसी लडके से कर देना पडी । छः माह बाद शादी भी हो गई । श्रीकात को लिखा, तार पर तार दिये पर वह आया ही नही । हाँ, शादी के दिन एक कीमती हीरे का हार, मय

पत्र भी डाक से अवश्य मिला। पत्र उषा के नाम था जिसमें उसने अपने न आने पर उषा से माफी चाही थी और लिखा था कि यदि वह मरने लगे तो उषा उसकी मिट्टी सुधार दे।

पत्र पढ़कर उषा रो उठी। मेरी भी आँखें छलछला आईं। शुभ अवसर होने के कारण मैं जी भर रो न सका। आँसू अन्दर ही अन्दर घुट कर रह गये।

[५]

उषा 'पराया-धन' थी सो पराये उसे ले गये। मेरा घर सूना हो गया। मैं हृदय में एक बेचैनी का अनुभव करने लगा। एक वर्ष का मेरा यह स्वर्ग-तुल्य गृह दोजख बन गया। तब से श्रीकांत.........

हाय! उसका स्मरण आते ही कलेजा मुँह पर आने लगता है। आँखें निर्झर बन जाती हैं। हृदय में एक तूफान उठ खड़ा होता है। हृदय से निकलती प्रत्येक दर्द-आह चिल्ला उठती है—"श्रीकांत! श्रीकांत!"

"बाबूजी तार आया है!"—नौकर ने आकर कहा!

"तार!" तार का नाम सुनते ही मैं समूचा का समूचा सिहर उठा।

दौड़ता-दौड़ता पोस्टमेन के पास पहुँचा। सही करने के पूर्व ही तार फाड़ डाला और पढ़कर सर कूट लिया। डाकिये के याद दिलाने पर सही की और वहीं सर पकड़कर बैठ गया। पत्नी डरती-डरती आई और पूछा—"क्या हुआ?"

"श्रीकांत .. ..!" भर्राये गले मैंने कहा।

"क्या श्रीकांत भैया देवलोक ...।"

"ओफ! वह क्यों जाने लगा। तुम क्यों नहीं चले जाते! अरे वह बीमार है सख्त! उषा और हमको जल्दी बुलाया है।"

"फिर सर पर हाथ धर क्यों बैठे हो! जल्दी करो, उषा को ले लेंगे–मोटर लेलो!" उतावली मचाते पत्नी बोली तथा नौकरों को सामान बाँधने का आदेश दे वह भी काम में जुट पड़ी!

[६]

किसी तरह हम श्रीकांत के घर पहुँच ही गये। वह पलंग पर, काठ की तरह सूखा पड़ा हुआ मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा था। सिरहाने एक लड़की बैठी थी जिसे लोग उसकी 'उषा' बता रहे थे। उषा यह सहन न कर सकी। "श्रीकात बाबूजी"—कहती वह श्रीकांत के पलंग पर जा पडी तथा फफक-फफक कर रोने लगी।

"मेरी प्यारी बच्ची, तुम आगई! श्रीकात तुम्हारा ही रास्ता देख रहा था बेटा! अब जा रहा हूँ बेटी! तेरी शादी में न आ सका। माफ करना। मेरी सारी सपत्ति तेरी है।"—और फिर मुझे देखते ही वह बोला—"अविनाश, अलविदा बन्धु अलविदा!" और मेरा श्रीकात, मेरा दोस्त–मेरा बाप–मेरा भाई सो गया सदा के लिये!

उषा, मैं, मेरी पत्नी रोते रहे, रोते रहे, रोते रहे। पर हाय! उसके प्राण-पखेरू तो उड़ गये थे! रोते रहने पर क्या शांति मिल सकता था?

—श्री श्यामसुन्दर व्यास

जीवन की भूल

कहानी से संबध मेरा है। और मै ही ठहरा उसका नायक, किन्तु मेरी नायिका तो अब नहीं है। भूल मेरी ही हुई है; मैंने ही जोरो की मुंह की खाई है; किन्तु किसी का बलिदान करके ही न ? जीवन मेरा है, उसके सुख-दुख का लेखा मैं ही दूंगा। परन्तु, जिनके बारे में ये सब लिख रहा हूं, वे तो न सुन सकेंगी। एक अभिनेत्री के समान जैसे वे मेरे साथ अपना अभिनय करने आई थीं और अपनी 'मधुर-स्मृति' की छाप मेरे हृदय पर छोडकर कहीं 'दूर' अभिनय करने चली गई हैं। और मधुर-स्मृति ? वह तो आज मानो हृदय की एक जबरदस्त-सी टीस बन बैठी है। सोचता हूँ और इसी लिए लिख रहा हूं कि मेरी इस कहानी को सुनकर

कोई 'निस्तार' भी दे सकेगा। उसे ही पाकर शायद यह आवेग शांत हो ले तो कहीं अच्छा है।

क्योंकि स्वयं एक जज हूँ। मुद्दइयों का श्रद्धेय हूँ। प्रतिदिन इनका भाग्य मेरे हाथों पर नाचा करता है। यहाँ तक कि कई बेचारे मेरे फैसले पर अपने घरेलू-झगड़े तय कराने आया करते हैं। किन्तु दिल के भीतर जो अन्तर्द्वंद्व हुआ करता है उसका 'निर्णय' तो स्वयं नहीं कर सकता। —न इसकी कोई रोक-टोक ही। 'हृदय में जो एक ज्वाला रह-रह कर जल रही है उसे शांत करने के लिए एक भी कानून मेरा साथ नहीं देना चाहता।' सोचता हूँ, लॉ पढ़ना भाड़ झोंकना ही हुआ। यदि नारी के संकोच-रूपी लॉ को पढ़कर समझ पाता, तो अपना यह जीवन तो सुखमय बना लेता।

हाँ तो, बी. ए. की परीक्षा समाप्त ही हुआ चाहती थी। समाप्त हुए पर्चों पर सिंहावलोकन करते समय मुझे ऐसा मालूम देता था कि जैसे मैंने एक लम्बी मंजिल तय करली है। अर्थ-शास्त्र के अंतिम-पर्चे का बिगड़ना, मेरी फर्स्ट-डिवीजन रूपी आशादेवी का रूठना साबित हो चुका था। कारण 'संकेतों'(हिंट्स) पर निर्भर रहने के सिवा और चारा न था। एक मित्र ने लश्कर से उन्हें पत्थर की लकीर के सदृश—ध्रुव-सत्य बताते हुए लिखा था। वे संकेत सत्य तो नहीं, हाँ मेरे दुर्भाग्य से, पत्थर के समान पाषाण-हृदय अवश्य बन गए थे।

पर्चे समाप्त हुए कि आगरे जाने की तयारियाँ करने लगा। रेल में भीड़ अधिक थी किन्तु कॉलेज-स्टुडेंट होने के नाते स्थान पा सकने में कोई दिक्कत न आई। दो दिन बाद आगरा फोर्ट पहुँच गया। सामने से ही, किला अपने अतीत के गौरव पर इठलाता हुआ दिखाई देने लगा। 'सोन-हलुआ, पेठे, नान-खटाई' की आवाजों में, मैं अपनी कुली-कुली की आवाज का सम्मेलन करने लगा।

पिताजी का बंगला सिविल लाइन्स में था। पहुँचा तो माताजी द्वार पर स्वागत के लिए खड़ी मिलीं। उनके पैर छुए, भीतर गया तो एक अपरिचित प्राणी से भेंट हो गई जो चिर-स्मृत बन गई है।

अम्मा ने उनका परिचय दिया। इनको तो तुम जानते नहीं विपिन। पिता तहसीलदार के ऑफिस में रीडर हैं। दो महिने हुए, उनकी बदली यहाँ की हो आई है। इनकी माँ नहीं है, घर मे भी दूसरा कोई नहीं है, इसलिये अपने यहाँ चली आती है। रज्जो (मेरी बहिन) से दाँत काटी रोटी समझो। मैंने देखा—मुस्कान की एक पतली रेखा उसके ओठों पर नाच चुकी है। नेत्रों को जमीन पर किये हुए वह सिमटी-सी बैठी है। अम्माँ कहाँ चुप रहती, कह उठीं 'भाई तो है, लज्जा क्या, उससे शर्म निभा सकोगी।' और हाँ वह अपनी राजा-रानी वाली कहानी तो सुना दो देखो, विपिन को पसंद आती है क्या? लज्जा के चहरे पर लज्जा की लाली दिखाई दी और इसके बाद वही

निदाघ—ग्रीष्म का साम्राज्य। इस मुद्रा को देख, 'पंत' जी की यह पंक्ति याद आगई—

सिखादो ना हे मधुप-कुमारि,
मुझे भी अपना मीठा गान।

हाँ, इसी समय हॉस्टल के एक साथी ने कुछ नागपुरी संतरे भेज दिये थे उन्हें निकालकर मैंने कहा—

अच्छा, अम्मा! ये नागपुरी संतरे तो चखो। उनको देकर, एक संतरा लज्जा को भी देने लगा। किन्तु, वह मूर्ति-सी निश्चल बैठी रही। आखिर मुझे विवश हो वह संतरा रज्जो को दे देना पड़ा जिससे कि वह उसे लज्जा को आसानी से दे सके।

किन्तु मैं चकित था कि मेरे हाथ से संतरा लेने में, ऐसी कौन-सी शक्ति थी, जो लज्जा को रोक रही थी; उसे भला किस बात से झिझक थी और...? और मैं सोचने लगा इस पहेली को, जो आज हृदय की कसक बन बैठी है और दिन-पर-दिन जटिल ही होती जा रही है। कुछ समय बाद अचानक मेरा ध्यान लज्जा की ओर गया। उसने संतरा छीला तक न था। और मुझे विवश हो दूसरे कमरे में चला जाना पड़ा।

कहना न होगा कि इसी प्रकार के कौतूहल में, मेरी गर्मी की छुट्टी, धीरे-धीरे व्यतीत होने लगी। मेरे आने से एक परिवर्तन होगया था। लज्जा अब हमारे यहाँ कम आने लगी थी। इसके विपरीत, रज्जो अवश्य उसके यहाँ

ज्यादा जाने लगी थी। इसका कारण उस समय मुझे अच्छी तरह से समझ में न आसका।

इसीलिए मुझे लज्जा पर क्रोध भी आया और हँसी भी। क्रोध था उसकी चुप्पी पर; मनहूसी पर; गूँगेपन पर। हँसी भी, उसके भोलेपन पर; झिझक पर; संकोच पर। क्रोध और हँसी के इस तुमुल-युद्ध में लज्जा मुझे 'रहस्य की देवी' जान पड़ी।

एक दिन की बात है। दिन रविवार था। मैं सो रहा था। अचानक जोर के वार्तालाप से मेरी नींद खुल गई। मैं चकित था कि दिन को सोनेवाले पिताजी आज जाग क्यों रहे हैं। और बीच-बीच में मेरा नाम लेते जा रहे हैं। उत्सुकता मुझे उनके कमरे की ओर खींच ले गई। अम्मा कह रही थीं, 'आप कैसी बातें करते हैं। लड़की साक्षात देवी है, देवी। शादी तो आपको लड़की से करना है न कि उसके पिता की गरीबी से। आपको दहेज का लालच सता रहा है, किन्तु याद रखिये लज्जा जैसी बहू आप चिराग लेकर भी ढूँढेंगे तो न मिलेगी।

पिताजी चिढ उठे—अकल तुम में शुरू मे नहीं है तो अब कहाँ से आ जायेगी। सोचो तो, कहाँ मैं जिले का इंजीनियर, और कहाँ लज्जा का पिता तहसीलदार का ५०) पाने वाला एक रीडर। तुम्हें इज्जत का कुछ खयाल है कि नहीं। हठ छोड़ो, विपिन के लिये उम्दा लड़की मैं ढूँढ दूँगा। देखना तो सही ग्रेजुएट से कम न होगी। अपनी जाति में

एक तो वैसे ही कम लड़के हैं, फिर पढ़े-लिखे तो और भी कम। अच्छी लड़की मिलने देर न लगेगी। माता जी ज्यादा पढ़ी-लिखी तो थीं नहीं कि 'डेजुपेट' का मतलब समझतीं। इसलिये वे बड़-बड़ाती हुई चली गईं।

और आज सोचता हूँ—यदि अम्माँ अपनी ज़िद पर ही रहतीं तो?

दूसरे दिन नहाकर आया तो देखा—रसोई घर में रज्जो के पास लज्जा बैठी हुई है। मुझे कुछ चुहल सूझी। यह देखने के लिये कि क्या अब लज्जा की शर्म चली गई है मैं रसोई घर में चला गया। वहाँ देखा कि वह लपककर अम्माँ के कमरे में चली गई थी। ओफ! अभी भी मुझे यह अनुभव न हुआ कि लज्जा केवल संकोच की ही मूर्ति नहीं है। वह तो इसी झिझक के सहारे मेरे मूक प्रेम-मार्ग पर चल पड़ी है। उसकी शर्म ही मेरे लिये आदर है, उसकी बेशर्मीलता में ही तो अनुराग है। लज्जा में ही मौन स्नेह का अवलंबन है। और जानता भी कैसे? इस युग की कुमारियों के हाव-भाव के विपरीत लज्जा का यह संकोच, मुझे आश्चर्य में जो डाल रहा था। और जीवन की उस सुख-रूपी हिरनी को बाँध लेने का मैंने प्रयास तक न किया। आज महसूस करता हूँ, काश! उसे बाँध पाता? तो अपने हृदय की इस अग्नि को तो न सुलगाने देता, जो आज रह-रह कर, प्रचंड ही होती जा रही है।

रज्जो रसोई घर में थी। वहीं आज कुछ विशेष

प्रोग्राम था। घी की सोंधी-सोंधी महक भली मालूम दे रही थी। इतने ही में छोटा भाई दौड़ता हुआ पास आया और कहने लगा, 'भैया, इनाम दो तो एक अच्छी बात सुनाऊँ मैंने कहा—'कह डालो, इनाम लायक होगी तो मिल जायगा।'

उसने कहा—नहीं, इनाम रज्जो-दीदी के पास रखना पड़ेगा।

मैं समझ गया—दोनो में कुछ साँट-गाँठ अवश्य है। इसलिए बनकर कहा, चपत खाओगे रमेश! नहीं बताना हो तो चलते-फिरते नजर आओ।

रमेश ने देखा कि अब तो वह घाटे में रहेगा, इसलिए कहना आरम्भ किया—बात यह है भैया कि हम लोग आजकल लज्जा को 'भाभी' कहने लग गए हैं और इसलिए वह हमसे दूर-दूर रहती है।

मैंने बनावटी क्रोध में कहा, 'तो इसमें मेरे लिए क्या खुशी की बात है। और मै उसे पकड़ने दौड़ा। लेकिन वह लज्जा के पास जा बैठा, जहाँ मेरी दाल गलना कठिन थी।

बाद में मैं, पिताजी और रमेश भोजन करने बैठे। इस बार रज्जो को शरारत सूझी। पिताजी से पूछने लगी 'आपने समोसे चखे, लज्जा ने बनाए हैं।' वे भला इसका और क्या मतलब निकालते। सो उन्होंने 'उम्दा' कहकर मेरा समर्थन चाहा। मैंने केवल हाँ ही कहा। इसके आगे मेरी जिह्वा रुक गई। मन ने अवश्य एक प्रस्ताव रखा, जिसका कि

हृदय ने समर्थन कर दिया—

'अब एक मधुर-इच्छा पर, अर्पित त्रिभुवन-यौवन-धन' किंतु मन की अवस्था एक-सी न रहने पाई, अचानक अम्मा पिताजी आदि की बहस पर ध्यान चला गया। लज्जा की मेरे प्रति उदासीनता, जो वास्तव में न थी, की ओर भी ध्यान गया। एक क्षीण निश्वास छोड़कर अपने-आप कहने लगा 'कहाँ तेरे भाग्य हैं रे विपिन।' किंतु जब सचेत हुआ तो पिताजी को अपने पर दृष्टि जमाये हुए पाया। मैंने झट अपनी मुद्रा बदल कर कहा 'रज्जो, ज़रा समोसे परोसना।' और बात जम गई।

इसके बाद कहना न होगा कि सुख के दिन छूट से गए। गर्मी की छुट्टी समाप्त होने के पहले लज्जा के पिता का तबादला फ़िरोज़ाबाद को हो गया। जाते समय रज्जो और लज्जा खूब रोईं। मैंने साहस बटोर कर कहा 'जा रही हो, लज्जा।'

हाँ!

भूलोगी तो नहीं!

मालूम नहीं उसने नहीं कहा कि नहीं। किंतु उसके आँसू-युक्त नेत्र शायद कह रहे थे 'क्या कभी भूल सकते हैं।'

उस समय मन में आया—बैठकर कहीं रो लिया जाय, हृदय की पीड़ा तो कम हो जावेगी। लेकिन उस समय रोना न आया। रो लेता तो आज यह तो न कहता कि—

तेरी जगाई हुई आग हश्र तक न बुझी,
हुए मर के भी न ठंडे, तेरे जलाए हुए।

कुछ दिन पश्चात मालूम पड़ा कि लज्जा के पिता ने मेरी और उसकी शादी के बारे में पिताजी को लिखा था, जिसके उत्तर में इन्होने 'ना' करदिया था।

उसके बाद की तो कुछ न पूछिए। दिन आए और चले गए। दिन को दुनियाँ वालो में मिल जाता और रात में अनिश्चित विचारों के सागर में गोते लगाता। इन चार सालों में कितना परिवर्तन हुआ, नहीं कह सकता। अम्मा चल बसीं। लज्जा की एक विधुर से शादी हो गई। पति फिरोज़ाबाद में वकील थे। प्रेक्टिस तो खैर अच्छी चल रही थी, किंतु पहली पत्नी से तीन सतानें थीं। घर में और कोई न था। सुना तो हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया।

मैंने यहाँ एम. ए. एल-एल. बी. किया। वहाँ रज्जो ने मेट्रिक। उसके लिए वर अच्छा मिल गया था। कॉलेज में वह प्रोफेसर था। शादी की तिथि निश्चित हो चुकी थी। निमंत्रण-पत्र भेजे जा चुके थे। लज्जा को भी बुलाया था और उसने आने का वचन भी दिया था किंतु वह न आई।

मुझे शादी के बाद एक काम से फिरोज़ाबाद जाना पड़ा। सोचा, लौटते समय लज्जा को शादी में न आने का उलहना तो देता चलूँ। वह घर पर न मिली। पड़ोस में पूछने गया तो उत्तर मिला कि वह आगरा शादी में जाने वाली थी। वकील सा. मना कर रहे थे और वह जिद पर थी। दो दिन दहाड़ मार-मार कर रोती रही और तीसरे दिन उसे उन लोगों ने पागल पाया। वह 'विपिन-विपिन'

चिल्लाया करती थी। इसलिये वकील सा. ने उसे घर से निकाल दिया है। सुनते ही मैं उसकी तलाश में चल पड़ा।

कई माह पश्चात वह मुझे आगरे में ही ताजगंज के पास जाती हुई दिखाई दी, चिथड़े लपेटे हुए।—मुख विकीर्ण होगया था। बाल उलझे हुए थे। उसके पीछे लड़कों का झुंड चला जा रहा था। मैं चिल्ला उठा 'लज्जा' किन्तु शायद उसे अपने नाम का भी विस्मरण हो चुका था। वह केवल 'विपिन-विपिन! कहकर हँस रही थी। मैंने पास जाकर कहा। यह तो है तेरा 'विपिन' लज्जा! विपिन सुनकर वह स्तब्ध होगई। लेकिन फिर कहने लगी 'तुम-तुम विपिन, नहीं कदापि नहीं; तुम उसकी छाया भी नही हो।' ओफ! वह केवल 'विपिन' के नाम को जानती थी—विपिन को नही। मैं ताँगे मे बिठा कर उसे स्टेशन ले गया और राँची को रवाना होगया। किन्तु वहाँ कोई लाभ न दिखाई दिया। एक रात वह कहीं चलदी।

और आज? आज पूरा एक वर्ष होने आया। उसका कहीं पता भी नही है। लज्जा के प्रेम को पहचानने में मेरी भूल हुई है—एक जबरदस्त भूल जिसकी रूप-रेखा खीचना मेरे लिये दुस्तर है। मैं अपनी कमजोरी पर कायल हूँ।

—श्री पुरुषोत्तमदास कठल

नरेन्द्र साहित्य कुटीर, इन्दौर

के

प्रकाशनों का संक्षिप्त परिचय

नोट —कुटीर के संबंध में ध्यान रखने योग्य बातें।

क कुटीर पूर्णतया व्यावसायिक सस्था नहीं।

ख कुटीर का उद्देश्य हिन्दी साहित्य की सेवा और उसके अपूर्ण अंगों की पूर्ति करना है।

ग कुटीर से होनहार नव लेखकों को प्रोत्साहन और बल मिला है और मिलता रहता है।

घ कुटीर प्रकाशनों का मूल्य व्यावसायिक दृष्टि से नही बल्कि सेवा भावना की दृष्टि से रखती है।

ड कुटीर से व्यवहार कर कभी आपको धोखा नही होगा, अटल विश्वास ही प्राप्त होगा।

च कुटीर ग्राहकों, अन्य प्रकाशकों एवं पुस्तक विक्रेताओं के हित का पूरा-पूरा ध्यान रखती है।

छ कुटीर ने युद्धकाल मे भी अपने प्रकाशनों का मूल्य अर्थ-लिप्सा वश नहीं बढ़ाया, किन्तु कागज के अभाव एवं भयंकर महँगाई में जिनका मूल्य अधिक रखना पडा उनका भी मूल्य कम कर दिया।

ज कुटीर से सयोजित 'नव निर्माण' मासिक भी हिन्दी और हिन्दी-हित-चितकों की हर तरह सेवा करने को तैयार है।

सुविधानुसार कुटीर स्थानीय अथवा अन्य प्रकाशको के ग्रंथ भी विक्री के लिये रखती व भेज दिया करती है।

कुटीर के प्रकाशन—

आलोचना साहित्य

सूरः एक अध्ययन—लेखक शिखरचंद जैन, साहित्यरत्न। इसमें सूर साहित्य की सर्वांगपूर्ण, सरस आलोचना है। सूर साहित्य के अध्ययन प्रेमी एव अन्वेषकों के काम का तो यह है ही साथ ही इन्टर से एम. ए. तथा प्रथमा से उत्तमा तक के छात्रो तथा समकक्ष अन्य परीक्षा के छात्रों के लिये उपयोगी है। इसका दूसरा संस्करण दिसम्बर १९४४ के अत तक छप जायगा। मूल्य १)

नारी हृदय की अभिव्यक्ति—ले. वही। इसमे 'यशोधरा' (रच. श्री गुप्तजी); 'नूरजहाँ' (रच. श्री गुरूभक्तसिंहजी) तथा 'ध्रुवस्वामिनी' (नाटिका ले. श्रीप्रसादजी) तीन सरस आलोचनात्मक निबध हैं, और इनके चरित्रो के आधार पर नारी-हृदय की मार्मिक, कचोट पूर्ण सरस अनुभूति की सुदर, प्रभावक अभिव्यक्ति की गई है, जिससे ममतामयी नारी के हृदय के तल की कोमल मधुरतम, किंतु विषादमयी भावनाओं पर प्रकाश पड़ता है। मूल्य छः आने, पृष्ठ संख्या ६४।

३ हिंदी नाट्य चिंतन—

हिंदी साहित्य मे यह अपने विषय का पूर्ण, अनूठा, नवीन और मौलिक ग्रथ है। इसमे कला, नाट्य-कला, हिंदी नाट्य-साहित्य एव विचार-धाराओ के विभिन्न अगो की विशद् मार्मिक विवेचना एवं अधिकार पूर्ण व्याख्या है। इसमे हिंदी के प्रमुख नाट्यकारो की सर्वांगपूर्ण सरस आलोचना है जो अब तक प्रकाशित अन्य ग्रथो मे आपको नही मिलेगी। बाद के निकले ग्रथ भी इसकी समता नही कर सके है। प्रसाद के नाट्य साहित्य पर सब दृष्टि कोणो से—पूर्ण रूप से—प्रकाश डाला गया है जो अन्यत्र प्राप्त नहीं। पुस्तकालयो, हिंदी के अध्यापको, प्रोफेसरों, छात्रो तथा आलोचनाप्रेमी पाठको के लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी और सग्रहणीय है।

[यह ग्रथ निम्न छोटे-छोटे भागो मे भी प्राप्त हो सकता है।]

क. हिंदी नाट्य चितन, प्रथम भाग (अप्राप्य)
ख. हिंदी नाट्य चितन, द्वितीय भाग, (प्रसाद का नाट्य चितन)।
ग. नाट्य कला एव साहित्य की रूप रेखाये।
घ. हिंदी के तीन प्रमुख नाट्य कार।
ङ. चन्द्रगुप्त एव प्रसाद के नाटकीय पात्र।

मूल्य साधारण जिल्द ४), खादी जिल्द ४॥)

४ नाट्य कला एवं साहित्य की रूप रेखायें।

इसमे कला एव नाट्य कला के मूल-उपकरणो पर एव इनके आधार पर सक्षेप मे किंतु गभीरता एव व्यापक दृष्टिकोण पूर्वक नाट्य कला एवं हिन्दी नाट्य साहित्य पर विवेचना की गई है। पृ. स. ७२, मू. ||-)

५ हिंदी के तीन प्रमुख नाट्यकार—

इसमे भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र, लक्ष्मीनारायण मिश्र एव सेठ गोविंददासजी के नाट्य-साहित्य की उत्कृष्ट और गठी हुई balanced समीक्षा है। मू. १=)

६ हिंदी नाट्य चिंतन (प्रथम भाग)

इसमे प्रकाशन सख्या ४ व ५ का ही विषय है। मूल्य १||=) अप्राप्य।

७ हिंदी नाट्य चिंतन (द्वितीय भाग)

अथवा

प्रसाद का नाट्य चिंतन

इसमे प्रसाद के नाट्य साहित्य के मूल उद्गमो, ऐतिहासिक आधारो, प्रसाद की अतर्मुखी प्रवृत्तियो का नाट्य साहित्य से सामजस्य, प्रसाद की विचार-धाराओ और उनके उद्गम और विकास के क्षेत्रो पर विशदता और गभीरता से सरस, भावपूर्ण, गठी विवेचना प्रसाद के सब नाटको को ध्यान मे रख-कर की गई है।

(प्रसाद लिखित 'ध्रुव-स्वामिनी' पर पृथक 'नारी हृदय की अभिव्यक्ति, में विचार किया गया है, अतः प्रसाद के अध्ययन, या हिन्दी नाट्य-साहित्य के अध्ययन की पूर्णता के लिये 'नारी हृदय की अभिव्यक्ति' भी पढ़ना आवश्यक है।)

इस विषय पर अब तक कोई ग्रथ इस कोटि का नहीं निकला है। अध्ययन प्रेमियों के अतिरिक्त इन्टर से एम. ए एव प्रथमा से उत्तमा तथा समकक्ष परीक्षाओ के छात्रो के लिये भी अत्यत उपयोगी है। प्रसाद के सब नाटको की आलोचना इसमे पूर्णतः आगई है।

८ चन्द्रगुप्त एवं प्रसाद के नाटकीय पात्र—

इसमे प्रसाद के चन्द्रगुप्त की मुद्राराक्षस, द्वि. राय के चन्द्रगुप्त तथा तत्सबधी अन्य साहित्य से प्रसादजी के चन्द्रगुप्त नाटक की सर्वांगपूर्ण आलोचना है एव प्रसाद के सब नाटको के सब पात्रो का चरित्र-चित्रण है। यह अब प्रायः समाप्त है। मूल्य ॥।)

९ जीवन की बूंदें—

यह श्री शिखरचद लिखित दस सुदर भावपूर्ण मौलिक कहानियो का सग्रह है। पत्रो और आलोचको ने इसकी खूब ही प्रशसा की है। पृष्ठ सख्या ९८, मू ।॥)

१० वासंती—

इसमे होनहार लेखको की मुख्यतः वसत पर लिखी हुई राष्ट्रीय, प्राणोत्सर्ग की भावनाओ का सचार करने

वाली आधुनिक कवितायें संकलित है, जो अन्यत्र प्रकाशित नही। पुस्तक रग-बिरगी स्याही मे पाकेट साइज में छपी है। पृष्ठ संख्या लगभग ७६, मू. ।=)

११ मेरे बोल—

रच. श्री रामचन्द्र शर्मा, 'नवजात'

इसे हि. सा. स. के सभापति पं. माखनलालजी चतुर्वेदी का आशीर्वाद प्राप्त है। प्रगतिवादिनी मार्मिक और हृदय की कचोट को व्यक्त करने वाली कविताओं से पूर्ण इसके सिवाय कोई दूसरी पुस्तक आपको नही मिलेगी। जो आपको अपने युग के दैन्य और दारिद्र्य का इतना अच्छा चित्र खींच सके। मूल्य केवल ।।।)

१२ खट्टी मीठी कहानियाँ—

ले. श्री भालचन्द्र जोशी, बी. ए., सा. र.

इसमे जोशीजी की आठ बालोपयोगी मौलिक कहानियाँ है। कहानियाँ दिलचस्प और शिक्षाप्रद है। भाषा सरल है। छपने के पहिले ही बालकों, बाल मित्र के संपादकों एवं सुरुचिपूर्ण पाठकों ने इन्हे खूब पसद किया है। स्व. गिजूभाई की शैली पर लेखक ने इन्हे लिखा है। मू. ।=)

१३ हमारे युग की कहानियाँ—

संपादक—श्री सूरजमल गर्ग, बी ए, एल एल बी., सा. र

शिखरचंद जैन साहित्य रत्न

इस युगान्तरकारी कहानी सग्रह मे २९ हे ६.१

प्रसिद्ध कहानी लेखकों की मौलिक सरस भावपूर्ण और मार्मिक कहानियाँ सग्रहीत की गई हैं, जो आपको गति, जीवन और सुदृष्टि देगी। सजिल्द पृष्ठ सख्या लगभग २७५, मूल्य २।।।)

१४ भक्ति रेखा—(कविता) मू. ।)

हमारे आगामी प्रकाशन—

१५ विश्व की राजनैतिक विचार-धारायें अर्थात भावी युग निर्माण का भूत, वर्तमान और भविष्य।

ले.—श्री सूरजमल गर्ग, बी ए, एल एल, बी. सा. र.

१६ जीवन को उत्थान देने वाले निबंध—

१७ जीवन और उत्थान की कहानियाँ—

१८ 'नव निर्माण'-मासिक—वार्षिक १)

इनके अतिरिक्त विविध विषयो के ग्रथो के भी प्रकाशित करने की हमारी योजना है।

नरेन्द्र साहित्य कुटीर,
५७, दीतवारिया, इन्दौर सिटी।

कुटीर की विनम्र प्रार्थना

यदि आप

जीवन, गति और सुदृष्टि देने वाला अ
साहित्य, कम स्थान में और उचित मूल्य में
खरीदना चाहते हों तो कुटीर को लिखिये

और आप

कम साहित्य अनावश्यक मोटाई या टाईप की
लंबाई मे चाहते हो तो……

आपको

सत्साहित्य और मोटाई या तडक-भड़क में
से एक चुनना है।